पण्डित विश्वम्भरदत्त चन्दोला के प्रबन्ध से गढ़वाली प्रेस,
देहरादून मे मुद्रित ।

मनोरञ्जक शास्त्रार्थ

(गुरुकुल-वेदि पर सनातनधर्म का डंका)

'ब्रह्मचारी' के पाठकों में यह शीर्षक बड़े औत्सुक्य और हर्ष से पढ़ा जायगा। वस्तुतः यह एक अपूर्व विलक्षण घटना हुई है। और इस घटना का महत्त्व तब और भी बहुत बढ़ जायगा, जब धर्मानुरागी सज्जन इसका परिणाम यह देखेंगे कि आर्यसमाज के तत्रापि 'बाबू पार्टी' के एकमात्र प्रधान गुरुकुल कांगड़ी की वेदि पर खास प्रतिवादी के मुख से जन्मसिद्ध वर्ण-व्यवस्था का सिद्धान्त प्रस्फुट होगया है। यह सनातनधर्म का एक विलक्षण महत्त्व है कि विचारस्रोत में पतित होने पर कट्टर से कट्टर प्रतिवादियों को भी इसकी गम्भीरता में निमग्न होना ही पड़ता है, अनेक मत और समाज इस ही प्रकार शिर नवाकर निमग्न हो गये, और होते जा रहे हैं, किन्तु सनातनधर्म के त्रिकालाबाध्य अटल सिद्धान्त उस ही एक अविनाशी निर्भ्रान्त रूप में सुस्थिर हैं। अस्तु, अब हम पाठकों का औत्सुक्य और अधिक न बढ़ा कर प्रकृत 'शास्त्रार्थ की मनोरञ्जक घटना' का संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट उल्लेख आरम्भ करते हैं।

सदा की तरह होलिका पर इस बार भी गुरुकुल कांगड़ी का वार्षिक महोत्सव था। नई बात इस बार यह थी कि उक्त महोत्सव पर 'वैदिक वर्णव्यवस्था' पर खुले शास्त्रार्थ का चेलेञ्ज दिया गया था। नोटिसों में यह चेलेञ्ज पढ़ कर हरिद्वार की 'विद्वत्समिति' शास्त्रार्थ के लिये प्रस्तुत हुई, और गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्रीयुत लाला मुन्शीराम जी के साथ उक्त विद्वत्समिति के मन्त्री का शास्त्रार्थ के नियम आदि के संबन्ध में

पत्रव्यवहार आरम्भ हुआ। यह पत्रव्यवहार बड़ी शिष्टता से प्रायः १० दिन चलता रहा, मुख्य ६ पत्र इधर से गये और उनके उत्तर में इतने ही उधर से आये। यह पत्रव्यवहार भी यद्यपि बड़ा मनोरञ्जक है, किन्तु स्थानाभाव से उसे हम इस बार अविकल उद्धृत नहीं कर सकते, आवश्य-कता प्रतीत होने पर आगे कभी प्रकाशित करेंगे। किन्तु उभयतः जो मनु नियम स्थिर हुवे उनका सार इस प्रकार है कि—

(क) विद्वत्समिति की सुविधा के लिये विचार का दिन पलट दिया गया, १९ मार्च के स्थान में १७ मार्च को प्रातः ८॥ बजे से विचार स्थिर हुवा, समिति की ओर से इस के लिये धन्यवाद दिया गया।

(ख) शास्त्रार्थ के समय मध्यस्थ रूप से सभापति कोई न माना गया, परस्पर के समय आदि में अनियम न होने देने की व असभ्यभाषण आदि न होने देने की नियन्त्रणा गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता के अधीन मानी गई।

(ग) शास्त्रार्थ में समय नियम यह हुआ कि प्रथम १० मिनट सनातन धर्म की ओर से जन्मसिद्ध वर्णव्यवस्था की स्थापना हो, फिर १० मिनट आर्य्य समाज की ओर इसका खण्डन व अपनी स्थापना हो, आगे क्रमशः ७–७ मिनिट ३-३ बार दोनों पक्ष वाले अपना २ स्थापना व दूसरे का खण्डन करें। आगे फिर १० मिनिट सनातनधर्म की ओर से उप-संहार और अन्त में १० मिनिट आर्य्यसमाज की ओर से अन्तिम वक्तव्य एक अवसर और बढ़ा दिया था, और अन्त के १० १० मिनिट के स्थान में १४-१४ मिनट दिये थे।

(घ) दोनों ओर के पक्ष प्रतिपक्षों की उक्तियों को आनुपूर्वी लेख बद्ध करने के लिये गुरुकुल की ओर से ४ ब्रह्मचारी नियत किये गये थे और इस लेख की यथार्थता पर साक्षि रूप से किसी संस्कृतज्ञ आप्त विद्वान के हस्ताक्षर हो जाना स्थिर हुआ था। शास्त्रार्थ के समय लाला मुन्शीरामजी ने इस हस्ताक्षरकार्य के लिये प० श्री आर्यमुनि जी को नियुक्त किया। बाद के अन्त में प्रार्थना करने पर उस समय आर्यमुनिजी के हस्ताक्षर नहीं

हुवे, गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाताजी ने कहा कि हमने नोटों की २ प्रति तैयार कराई हैं, हस्ताक्षर होने के बाद १ आप के पास भेजदी जायगी। (यह प्रति अभी तक हमें नहीं मिली। प्रत्युत उनके पत्र से मालुम हुवा कि अभी तक हस्ताक्षर भी नहीं हो सके हैं, अस्तु) 'विद्वत्समिति' की ओर से भी कई विद्वान् बराबर दोनों ओर के नोट ले रहे थे—उन ही के आधार पर वर्तमान में यहां शास्त्रार्थ का वृत्तान्त दिया जायगा)।

(ङ) प्रमाण के विषय की विप्रतिपत्ति अन्त तक निवृत्त न हो सकी। विद्वत्समिति की ओर से पहले पूछा गया था कि प्रमाण कौन २ ग्रन्थ माने जायगे? इस पर गुरुकुल की ओर से 'ऋक्, यजुः, साम और अथर्व नाम से प्रसिद्ध चारों संहिताओं का' नाम लिया गया था। विद्वत्समिति की ओर से यह बात मान ली गई और बाद काल में दोनों पक्षों का साधन, बाधन केवल मन्त्रभाग के ही आधार पर हो—यह दृढ़ता से बार २ निवेदन किया गया। किन्तु उधर से पचड़ा यह डाला जाता था कि जब सनातनधर्म में ब्राह्मण, स्मृति, पुराण आदि भी सर्वथा वेद से अविरुद्ध और प्रमाणभूत माने जाते हैं तो उस पक्ष का बाधन इन सब के आधार पर भी क्यों न हो। विद्वत्समिति की ओर से उत्तर था कि एक तो वादकाल में दोनों पक्षों के प्रमाण एकरूप ही रहने में सामञ्जस्य होता है। जब मन्त्रभाग दोनों को अविशङ्क माननीय है तो दूसरे प्रमाणों की ओर जाने की आवश्यकता क्या? शास्त्रार्थ 'वैदिक वर्ण व्यवस्था' पर है, इस में यही निश्चय होना चाहिये कि वेद में कैसी वर्ण व्यवस्था सिद्धान्तभूत है, इस विचार में ग्रन्थान्तरों का उपयोग ही क्या? दूसरे वाद का समय थोड़ा है, सब प्रमाणों को घर घसीटने में परस्पर शङ्का ही शंका होती रहेगी, निर्णय कुछ न हो सकेगा। इससे उचित यही है कि केवल वेद को ही आधार मान कर विचार किया जाय, जिसका कुछ निर्णय भी हो सके। तीसरे वेद से अविरुद्ध होने के कारण यदि स्मृति पुराणादि के आधार पर हमारे पक्ष की परीक्षा हो सकेगी तो श्रीस्वामी दयानन्दजी के ग्रन्थों के आधार पर आपके मत की भी परीक्षा क्यों न हो सके? आप भी तो श्रीस्वामीजी के ग्रन्थों को वेद के अवि-

रुद्ध प्रमाणमूल मानते हैं? फिर उनको वाद में क्यों नहीं आने देना चाहते? अस्तु—इस पर कई पत्रों में वाद विवाद चलता रहा, विद्वत्समिति के युक्तियुक्त अन्तिम पत्र का उत्तर गुरुकुल से कुछ न मिल सका, और समय पर आने के लिये उनने सूचना दे दी।

तदनुसार फाल्गुन शु० १३ ता० १७ मार्च को प्रमाण पुस्तकों के कई ट्रङ्क एक वृषभ शकटी पर लाद कर प्रातः काल ही विद्वत्समिति के बहुत से विद्वान् सभ्य गुरुकुल की ओर चल पड़े। ऋषिकुल के प्रधानाध्यापक साहित्याचार्य शास्त्रशास्त्री पं० कृपारामजी 'पद्माकर' प्रभृति अनेक विद्वान् उक्त समिति के अन्तर्गत थे, अम्बाले से सनातन धर्म के योग्य उपदेशक श्री पं० ताराचन्द्र शास्त्री भी पधारे थे। नियत समय ८॥ बजे से पूर्व ही गुरुकुल कांगड़ी के पण्डाल में यह विद्वन्मण्डली उपस्थित हुई। पण्डाल में मुख्य वेदि (प्लेट फार्म) के सामने पश्चिम और एक और प्लेट फार्म हम लोगों के लिये बनाया हुवा था। जिसका कि प्रवेशद्वार आदि सब भिन्न था। द्वार पर स्वागत के लिये योग्य सज्जन उपस्थित थे। हरिद्वार आदि के बहुत से विद्वान् पण्डित, विद्यार्थी आदि दर्शक रूप से भी वहां उपस्थित हुवे थे। आर्य्यसमाजी जनता तो बहुत अधिक संख्या में एकत्रित थी ही। हमने पहुंच कर अपने प्लेट फार्म पर पुस्तक आदि का प्रबन्ध किया, और सब यथास्थान स्थित हुवे। गुरुकुलवेदि पर मुख्याधिष्ठाता स्नातक व प्रोफेसरों के अतिरिक्त श्रीस्वामी आर्यमुनिजी, स्वामी पूर्णानन्दजी, स्वामी सत्यानन्दजी, श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी आदि आर्य्य समाज के योग्य विद्वान् उपदेशक भी उपस्थित थे। अतः व देखने योग्य था।

नियत समय से कुछ पीछे श्रीयुत दामोदर सातवलेकरजी का निबन्ध पूरा होने पर श्रीयुत लाला मुन्शीरामजी ने शास्त्रार्थ के आरम्भ की सूचना दी, आपने परस्पर के पत्र व्यवहार का पूर्वोक्त सारांश सुनाया, जयशब्द, ताली आदिका सर्व साधारणको निषेध किया, व नियमबद्ध कार्यप्रणाली चलाने का अनुरोध किया। प्रमाणों के

सम्बन्ध में आपने कहा कि यह प्रश्न परस्पर तय नहीं हो पाया है, अतः अब मैं उभय पक्षवालों से यही कहूंगा कि वे अपनी २ इच्छा के अनुसार प्रमाण उपस्थित करें। किन्तु यह अनुरोध करता हूं कि विचार्य्य विषय वर्णव्यवस्था के बाहर की कोई बात न बोलें। मैं केवल समय की सूचना के लिये ९ मिनट पूर्व घण्टी बजा दिया करूंगा। समय पूर्ण होने पर घण्टी बराबर तब तक बजती रहेगी, जब तक वक्ता बैठ न जाय। दोनों पक्षों के लिपिबद्ध करने को ४ योग्य व्यक्ति नियुक्त हैं। हस्ताक्षरों के लिये मैं श्री पं० आर्यमुनिजी को नियुक्त करता हूं इत्यादि। इस के अनन्तर कार्य आरम्भ हुवा। प्रथम विद्वत्समिति की ओर से पं० श्रीगिरधर शर्माजी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य, न्यायशास्त्री, विद्यानिधि ने १० मिनिट में जन्म सिद्ध वर्णव्यवस्था सिद्धान्त की स्थापना की। जिसका सारांश इस प्रकार है।

"सज्जन गण! वर्णव्यवस्था पर ही हमारे धर्म की विशेषता अवलम्बित है, इस ही के कारण आज करोड़ों वर्षों से यह धर्म और जाति जीवित है। जन्म से वर्णव्यवस्था होकर बराबर प्रचलित है। उस के लिये किसी प्रमाण विशेष की आवश्यकता नहीं, किन्तु कुछ काल से यह विचार उठा है कि गुण कर्म के अनुसार वर्ण मानना चाहिये। इस ही विप्रतिपत्ति के आधार पर आज यह विचार आरम्भ हुवा है। सब से प्रथम मैं आप लोगों का ध्यान इस आवश्यक रहस्य की ओर दिलाता हूं कि तीनों द्विज वर्णों के वेद और लोक में प्रसिद्ध नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, अपत्यप्रत्ययान्त हैं। इनकी अपत्यप्रत्ययान्तता ही दिखला रही है कि ब्राह्मणत्वादि अपत्यता पर अवलम्बित है, अर्थात् ब्राह्मण का अपत्य ही ब्राह्मण हो सकता है, क्षत्रिय का अपत्य ही क्षत्रिय इत्यादि। दूसरे हम लोग सदा अपने कौशिक भरद्वाज, भार्गव आदि गोत्र बोलकर दिखाया करते हैं कि हम विश्वामित्र, भृगु, भरद्वाज आदि की सन्तान में से हैं, और अभिमान करते हैं कि भरद्वाज आदि का रुधिर आज भी हमारे शरीर में प्रवाहित है। गुण, कर्म, से वर्णव्यवस्था होती तो इस अभिमान का हमें कोई हक नहीं था। हम किस की

सन्तान में हैं यह हम ज्ञान भी न सकते। अथ शब्द प्रमाण की ओर चलिये। आज 'वैदिक वर्णव्यवस्था' पर शास्त्रार्थ है, इस लिये हमारी अभिलाषा है कि आज केवल वेद मन्त्रों के आधार पर ही य विचार किया जावे कि वेद कैसी वर्णव्यवस्था मानता है। मैं अपने पक्ष में वेद मन्त्र ही प्रमाण दूंगा। पहले पुरुष सूक्त का यही मन्त्र लीजिये, जो अत्यन्त प्रसिद्ध है। और ऋक, यजुः, अथर्व, तीन वेदों में कुछ पाठ भेद से आया है

> "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
> ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत" ॥

इसके चतुर्थपाद में पैरों से शूद्रों का उत्पन्न होना स्पष्ट 'अजायत' शब्द से लिखा है, उसके अनुरोध से पहिले के ३ पादों में भी कार्य और कारण का अभेद से निर्देश मान कर 'मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ' इत्यादि ही अर्थ मानना चाहिये। मीमांसा का सन्दिग्धार्थ निरूपणाधिकरण' न्याय भी यही बताता है कि आगे के उपसंहार वाक्य के अनुरोध से पूर्व के वाक्यों की व्यवस्था कर लेनी चाहिये। शाखान्तर में (कृष्ण यजुर्वेद में) जो इसका समानार्थक मन्त्र है, उस में उत्पत्ति स्पष्ट लिखी है।

> 'प्रजापतिरकामयत, प्रजायेयेति, स मुखतस्त्रिवृतं
> निरमिमीत, तमग्निर्देवता अन्वसृज्यत, गायत्री छन्दो,
> रथन्तरं साम, ब्राह्मणो मनुष्याणाम्, अजः पशूनाम्,
> तस्मात्ते मुख्याः मुखतो ह्यसृज्यन्त' ॥
>
> (तैत्तिरीय संहिता ७ का० १ प्रपा० १० अनु)

यहां अग्नि देवता, गायत्री छन्द, रथन्तर साम, ब्राह्मण और अज (बकरा) की उत्पत्ति मुख से स्पष्ट शब्दों में कही है। आगे और २ वर्णों की भी बाहु आदि से उत्पत्ति लिखी है। तो इन सब श्रुतियों से ब्राह्मणादि का उत्पत्तिसिद्ध होना स्पष्ट ही प्रकट हो गया। उत्पत्ति अर्थात् जन्म से ही ब्राह्मण ब्राह्मण और क्षत्रिय क्षत्रिय होता है। ईश्वर ने चारों को भिन्न२ पैदा किया है, ये गुण कर्म से नहीं बनते। और भी श्रुतियां ब्राह्मण

को उत्पत्ति सिद्ध बताती हैं, जैसा कि अथर्व वेद काण्ड १९ अनुवाक ३ सूक्त २२ का २१ वां मन्त्र है।

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमाततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोऽथ जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्द्धितुं कः।

अर्थात् ब्राह्मण का वीर्य सब से ज्येष्ठ (उत्कृष्ट) है, ब्राह्मण यः द्वारा द्युलोक को विस्तीर्ण करता है। भूतों में ब्राह्मण ही सब से प्रथम उत्पन्न हुआ, उस ब्राह्मण के साथ और कौन स्पर्द्धा कर सकता है यह भी ब्राह्मण को सब से प्रथम उत्पन्न कह कर ब्राह्मणत्वादि जाति उत्पत्ति सिद्ध बताई है। और लीजिये—अथर्व० काण्ड ४ अनु० २ सूक्त ६ का पहिला मन्त्र है कि—

* ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकाराऽरसं विषम्॥

यहां ब्राह्मण की उत्पत्ति तो प्रथम बताई ही है, किन्तु 'दशशीर्ष' और 'दशास्य' ये दोनों ब्राह्मण के विशेषण यहां विशेषतः विचारणीय हैं। मेरे विचार से इन का यह अभिप्राय है कि ब्राह्मण जाति के दश शीर्ष-स्थानीय हैं, अर्थात जैसे पहिले मस्तक उत्पन्न होकर फिर उससे सब शरीर उत्पन्न होता है, वैसे ब्राह्मणों में दश ऋषि, जो कि गोत्र निबन्धों में प्रसिद्ध हैं-जमदग्नि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, कश्यप, वशिष्ठ, भृगु, अङ्गिरा, अगस्त्य—ये सब से प्रथम उत्पन्न हुवे और इनसे सब ब्राह्मण उत्पन्न हुवे। एवं चार वेद और छः वेदाङ्ग ब्राह्मण के मुखमें विराजते हैं, अतः वह दशास्य कहाता है। वही ब्राह्मण प्रथम सोमपान करता है,

* यद्यपि इस मन्त्र का अर्थ भाष्यकार सायणाचार्य ने तक्षक सर्प-परक किया है। किन्तु वैदिक मन्त्र अतिगंभीरार्थक कई आशयों को क्रोडीकृत किया करते हैं। इस से स्पष्ट अक्षरों से प्रस्फुटित प्रकृत अर्थ करने में भी कोई बाधक नहीं। और आर्यसमाज दश मस्तक के सर्प आदि को प्रकृति विरुद्ध होने से नहीं मानता। अतः उन के प्रति यही अर्थ होना चाहिये।

और अपने प्रभाव से विषको भी निर्वीर्य कर देता है। इस से दश गोत्र-प्रवर्तक ऋषियों की सन्तति होना, और वेद वेदाङ्ग का अध्ययन दोनों ही ब्राह्मणत्व के प्रयोजक हुवे। केवल गुण कर्म नहीं। और सुनिये—पिता, माता के प्रशस्त होने पर ही पुत्र का प्रशस्त होना जन्म सिद्ध वर्णव्यवस्था का मूल सिद्धान्त है। सो श्रुति में स्पष्ट उद्घुष्ट है—

'ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यम्, ऋषिमार्षेयम्' शु य. अ. ७।४६

यहां पितृमान् शब्द में बुद्धिमान् आदि शब्दों की तरह प्रशंसा अर्थ में ही मतुप् प्रत्यय मानना होगा। क्योंकि विना पिता का तो कोई होता ही नहीं। तब जिस का पिता और पितामह अर्थात् पितृकुल प्रशस्त है, उस ही को ब्राह्मण इस श्रुति ने बताया। अब केवल गुण, कर्म के अनुरोध से जिस किसी के पुत्र को भी ब्राह्मण बना देना श्रुत्यनुमोदित कहां रहा? एवं राजसूय यज्ञ में राजा का अभिषेक करता हुवा अध्वर्यु मन्त्र पढ़ता है कि—

'इममसुष्य पुत्रमसुष्यै पुत्रम्' (यजु० अ० ६)

अर्थात् यह अमुक पिता का और अमुक माता का पुत्र है। कहिये, पिता माता के नाम निर्देश की क्या आवश्यकता पड़ी? यहां गुण, कर्म, नहीं बताये! बताये माता और पिता। इस से स्पष्ट सिद्ध है कि जिस का मातृकुल, पितृकुल दोनों शुद्ध हैं, वही तत्तद्वर्ण का होकर यज्ञादि कर्मों में अधिकारी होता है। और भी देखिये, पिता आदि के अनुसार ही पुत्रादि भी कर्म करें—यह श्रुति से सिद्ध होता है—

'अनुप्रत्नस्यौकसो हुवे तं विप्रतिं नरम्। यं ते पूर्वं पिता हुवे'

(ऋ० १ मण्ड० ३० सू० ९ मं०)

'येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तोऽङ्गिरसो गा अविन्दन्'

(ऋ० १ म० ६२ सू० २ मं०)

इन मन्त्रों में जैसे हमारे पितृ पितामहादि अमुक देवता का आवाहन अर्चन करते थे, वैसे हम भी करते हैं, यह बताया है। यही वर्णव्यवस्था का मूल सिद्धान्त है कि जो जिस का कुल क्रमागत धर्म है, उस ही का

यह अनुष्ठान करता रहे। वर्णविभाग से कर्म विभाग है, कर्म से वर्ण नहीं बनते। सज्जनो! इस सम्बन्ध में बहुत से प्रमाण दिये जा सकते हैं, समय की अल्पता के कारण मैंने कुछ प्रमाण आप लोगों की सेवा में उपस्थित किये हैं, जिन से कि वर्णव्यवस्था के जन्मसिद्ध होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। अब मैं अन्त में इतना और निवेदन कर देना उचित समझता हूं कि दूसरे पक्ष से यदि मेरे प्रमाणों का अर्थान्तर किया जाय, तो उन को यह भी दिखाना आवश्यक होगा कि मेरा अर्थ क्यों अप्रमाण है, और वे अर्थ करेंगे वह क्यों माननीय है। इस बात की व्यवस्था अवश्य करनी होगी कि जब वेदसंहिता मात्र ही स्वतः प्रमाण हैं, तो उन का अर्थ निर्णय हम किस प्रकार से करें? यह व्यवस्था भी मैं दूसरे पक्ष पर ही छोड़ता हूं।

इस सिद्धान्त-स्थापन का उपस्थित जनता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। आगे गुरुकुल की ओर से वहां के प्रोफेसर स्नातक इन्द्रचन्द्र जी वेदालङ्कार अपना पक्ष समर्थन करने को खड़े हुवे। उन की उक्ति का सार इस प्रकार है—

वर्णव्यवस्था के आश्रय पर जाति स्थिर रही, यह ठीक है, किन्तु जब से वर्णव्यवस्था का यथावत् पालन न रहा, उसे जन्म के साथ जोड़ दिया, तब ही से जाति की अवनति हो गई। पण्डितजी ने जन्मसिद्ध वर्णव्यवस्था को प्रचलित कहा है, सो प्रचलित होना कोई युक्ति नहीं। प्रचलित तो सुरापानादि भी हैं। जाति और वर्ण शब्द के अर्थ में कुछ भेद भी है या नहीं, यह कुछ नहीं कहा गया। वर्ण शब्द का एक अर्थ गुण (रूप) भी है, वर्ण शब्द के उस अर्थ का इस वर्ण से कुछ सम्बन्ध है या नहीं—यह बताना चाहिये था। वर्ण शब्द के अर्थ से ही ब्राह्मणादि में गुणसम्बन्ध सिद्ध हो जाता है। ब्राह्मणादि शब्दों में अपत्यप्रत्यय अवश्य है, किन्तु किस शब्द से है? ब्रह्म शब्द से अपत्य प्रत्यय होकर ब्राह्मण शब्द सिद्ध होता है। इस से ब्राह्मण का लड़का ब्राह्मण हो—यह बात कहां से निकली। मैं पण्डितजी को चेलेञ्ज करता हूं कि वे ब्राह्मण आदि शब्दों से ब्राह्मण का अपत्य ब्राह्मण होता है—यह बात स्पष्ट सिद्ध करें। अब

प्रमाणों की विवेचना करिये—"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" मन्त्र में मीमांसा के किसी न्याय से पण्डित जी ने "अजायत" अर्थ किया है। किन्तु मैं कहता हूं कि वेद स्वतः प्रमाण है, वेद के अर्थ में मीमांसादि की सहायता आवश्यक नहीं। वेद का अर्थ वेद से ही पूछना चाहिये। कहने वाले से ही उस के वाक्य का अर्थ ठीक निर्णीत होता है। अब वेद से पूछिये—वहां क्या अर्थ है? इस का पहिला मन्त्र है "मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते" अर्थात् इस का मुख क्या है, बाहु क्या है, ऊरू और पाद क्या हैं। इस प्रश्न का उत्तर यदि यह दिया जाय कि 'मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुवा' तो प्रश्न के अनुकूल उत्तर नहीं मिलता। प्रश्न मुख का था, न कि ब्राह्मण का। यह तो "आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे" हो जाता है। इस से प्रकृत मन्त्र का अर्थ यही है कि 'मनुष्य जाति में जो मुख के समान हैं, वे ब्राह्मण हैं, इस से उत्पत्तिसिद्धता नहीं आती। प्रत्युत मुख के सदृश जो उत्कृष्ट होगा जिस में विद्या आदि गुण होंगे, वही ब्राह्मण कहलावेगा। और भी जितने प्रमाण पढ़े हैं, उन का अर्थ यही है कि 'ब्राह्मण श्रेष्ठ थे' सो ठीक ही है। विद्या आदि गुण होने से ब्राह्मण सदा ही श्रेष्ठ होता ही है। 'ये ज्येष्ठं ब्राह्मणं विदुः' 'युनक्त क्षत्रम् अजरं ते अस्तु' इत्यादि श्रुति में भी यही बात है। वेद की व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुकूल जाननी चाहिये, सो ब्राह्मण हमारे ही अनुकूल हैं। गोपथ ब्राह्मण में लिखा है 'व्रतेन ब्राह्मणः संशितो भवति, अविच्छिन्नो भवति' इत्यादि। व्रत अर्थात् उत्तम कर्म से ही ब्राह्मण होता है, इस लिये गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था ही सिद्धान्त सिद्ध है।

पं० गिरिधरशर्माजी (द्वितीयवार)

न्यायदर्शनकार गौतम मुनि ने वाद की मर्यादा यह नियत की है कि दोनों पक्षवाले अपने २ पक्ष की स्थापना और दूसरे का खण्डन करें। किन्तु हमारे प्रिय चिरजीवी इन्द्रजी स्नातक ने गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था की स्थापना में एक भी मन्त्र प्रमाण नहीं दिया। केवल मेरे प्रमाणों पर कुछ आक्षेप मात्र किये। बिना स्वपक्षस्थापना के तो यह वितण्डा हो गई, वाद कहां रहा। वर्ण और जाति शब्दों का अर्थ और उनका

भेद पूछना विषयान्तर है, इसमें 'अर्थान्तर' रूप निग्रहस्थान आजाता है। वर्ण शब्द का अर्थ गुण है-इससे ही आप गुण का संबन्ध ब्राह्मणादि में लाते हैं और उनके परिवर्तन की भी आशा करते हैं, किन्तु मैं कहता हूं कि वर्ण शब्द का अर्थ अक्षर भी है उस ही का संबन्ध ×ब्राह्मणादि में क्यों नहीं मान लेते। ऐसा होने पर जैसा एक वर्ण (अक्षर) दूसरे वर्ण (अक्षर) के रूप में कभी नहीं जाता, अ कभी इ या क नहीं होता-उस ही प्रकार ब्राह्मणादि का भी परिवर्तन नहीं होता-यही सिद्ध हो जायगा। आपने सुरापान भी प्रचलित बताया है, किन्तु स्मरण रहे-सुरापान प्रशंसा के साथ खुला प्रचलित नहीं है। ऐसे कर्म करने वाले को और तो क्या अपनी आत्मा भी निन्दा करता है। वर्णव्यवस्था की प्रचलितता में बहुत बड़ा भेद है। अतः अपना पक्ष बतलाने के लिये प्रचलितता भी अवश्य एक युक्ति है। ब्राह्मण आदि शब्दों में अपत्यप्रत्यय मान कर भी जो आपने शङ्का उठाई है, और मुझे चेलेञ्ज किया है-वह बिलकुल निःसार है। ध्यान दीजिये कि ब्रह्म, क्षत्र, और, विश् शब्द भी तीनों वर्णों के वाचक हैं, 'यत्र, ब्रह्म च क्षत्रं चोभे' इत्यादि श्रुति में ब्रह्म, क्षत्र शब्द का अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय [illegible] , उनही ब्राह्मणादिवाचक ब्रह्मादि शब्दों से अपत्य प्रत्यय होकर ब्राह्मणादि शब्द बनते हैं, और वे भी उनके समानार्थक ही रहते हैं। इस से स्पष्ट सिद्ध है कि जिसका स्वयं भी 'ब्रह्म' अर्थात् ज्ञान से संबन्ध है, और जो ब्रह्म अर्थात् ब्राह्मण का पुत्र भी है वही ब्राह्मण होगा। स्वयं भी क्षत्र-क्षतत्राण कर्ता है, और क्षत्र का पुत्र भी है वही क्षत्रिय होगा। क्या अब भी जन्म से वर्णव्यवस्था सिद्ध नहीं हुई? आपने कहा है कि वेद के अर्थ में और शास्त्र की आवश्यकता नहीं, वेद का अर्थ वेद से ही पूछो। मैं कहता हूं कि आप बिना शास्त्रों के अग्नि शब्द का अर्थ तो कर लीजिये। वेद यह कैसे बता सकेगा कि अग्नि शब्द का अर्थ प्रज्वलित पावक है? इसके लिये आपको अवश्य व्याकरण या व्यवहार की शरण लेनी पड़ेगी।

×'ब्राह्मणा ब्राह्मणं निरवर्तयत्' इत्यादि श्रुति में वर्णशब्द से ब्राह्मणादि का संबन्ध स्पष्ट बताया है।

फिर मीमांसा का तिरस्कार आप कैसे कर सकते हैं ? 'ब्राह्मणोऽस्य मुख-मासीत्' के अर्थ में आपने प्रश्न और उत्तर की असमञ्जसता बताई है, वह भी युक्त नहीं। 'मुखं किमस्यासीत्' इत्यादि वाक्यद्वारा मुखादि के लक्षण का प्रश्न है। लक्षण दो प्रकार का होता है—स्वरूप लक्षण, और तटस्थ लक्षण। तटस्थ लक्षण कार्य कारण आदि के द्वारा ही होता है—जैसा कि वेदान्त सूत्र में 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' कह कर 'जन्माद्यस्य यतः' सूत्र द्वारा इस संसार के जन्मादि का जो कारण है वही ब्रह्म है—यह तटस्थ लक्षण कहा है। यहां यह शङ्का कदापि नहीं होती कि ब्रह्म के प्रसङ्ग में संसार का जिक्र क्यों किया गया ? संसार की कारणता के द्वारा ब्रह्म का परिचय कराया है, यह सब ही बुद्धिमान् समझ लेते हैं। इस ही प्रकार यहां भी मुख, ऊरू आदि के लक्षण का प्रश्न था, जिससे ब्राह्मण उत्पन्न हुये हैं—यह पुरुष का मुख है—इस प्रकार कार्य द्वारा परिचय देते हुवे उसका उत्तर दे दिया—इसमें असमञ्जस क्या हुआ ? आपने जो मन्त्र का अर्थ किया है कि 'इस मनुष्यसमाज का मुख ब्राह्मण है' सो बिलकुल ठीक नहीं हो सकता। क्योंकि इस पुरुषसूक्त के मन्त्रों में सर्वत्र पुरुष की अनुवृत्ति है, 'अस्य' 'तस्य' 'ततः' आदि शब्दों से पुरुष ही लिया जाता है। तब ही तो 'छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्' इस मन्त्र में पुरुष—ईश्वर से वेद प्रकट हुवे—यह अर्थ बनता है। यदि यहां आप 'अस्य' का अर्थ मनुष्य समाज करेंगे, तो वहां भी मनुष्य समाज ने वेद बनाये—ऐसा अर्थ हो जायगा। मनुष्य समाज का यहां कोई प्रसङ्ग ही नहीं है, फिर 'अस्य' का अर्थ मनुष्य समाज कैसे किया जा सकता है। सुतरां पुरुष के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुवा—यही अर्थ युक्तियुक्त होगा। मेरे और प्रमाणों पर आपने कुछ नहीं कहा है। 'ब्राह्मण की श्रेष्ठता के प्रमाण मैंने नहीं दिये हैं, मैंने कई मन्त्रों से ब्राह्मणादि को जन्म सिद्ध बताया है, ब्राह्मणों के गोत्रप्रवर्तक ऋषियों तक का जिक्र मन्त्र में बताया है। अपने पक्ष की पुष्टि में भी आपको प्रमाण देने चाहियें।

स्नातक इन्द्रचन्द्रजी (द्वितीय बार)

पण्डितजी बड़े होने के कारण मेरे मान्य हैं, वे मुझे वितण्डावादी कहें, या निग्रह स्थान में ले जांय, मूर्ख बतावें—इसके लिये मैं कुछ न कहूंगा

धन्यवाद ही दूंगा। ये जितवहा आदि शब्द व्यर्थ ही इनने कहे हैं। ऐसे शब्दों से कोई फल नहीं। इन का पुरुषसूक्त का प्रमाण प्रधान था। उसकी मैंने सम्यक् विवेचना कर दी। पंडितजी ने उसका कोई संतोषप्रद उत्तर नहीं दिया। आप की अर्थ कल्पना में प्रमाण क्या? आप कहते हैं ब्राह्मण उत्पन्न होता है। मैं भी कहता हूं। हां ब्राह्मण उत्पन्न होता है। ब्राह्मण का उत्पन्न होना तो सबही मानते हैं, झगड़ा तो योनि, या गुण कर्म पर है। मैं कहता हूं गुण, कर्म से ही उत्पन्न होता है। अब 'अजायत' का अर्थ भी ठीक हो गया। ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रमाण मैंने दिया था। उसका पंडित जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। आप मीमांसा, व्याकरण आदि की सहायता आवश्यक बताते हैं। मैं पूछता हूं—पण्डित जी! यदि मीमांसा और व्याकरण हमें वेदविरुद्ध ले जांय तो वे कैसे प्रमाण हो सकते हैं। वेद में प्रश्न और उत्तर की संगति जिस प्रकार रहै—यही अर्थ करना चाहिये। आर्यसमाज के पक्ष में मैं प्रमाण देता हूं।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥

(ऋ० मं० १० अ० १० सू-१२५ म० ५)

इस मंत्र की वाक् ऋषि है। वेदवाणी कहती है कि मैं ही ब्राह्मण बनाती हूं। और इसका भी तो अर्थ करिये—यह मन्त्र निरुक्त में भी आया है—

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवोनुगा इव तस्थिम ॥

आप के सायणाचार्यजी अर्थ करते हैं 'ऋषि' कहता है कि मैं कारु अर्थात् वेदसूक्तों का कर्ता हूं, और पुत्र भिषक् (वैद्य) है, लड़की उपलप्रक्षिणी, अर्थात् पत्थर तोड़ने वाली है। जब एक ही कुटुम्ब में सब प्रकार के काम होते हैं तो जन्म से वर्णव्यवस्था कहां रही? आपने ब्रह्मशब्द से ब्राह्मण बनाया है, किन्तु मैं कहता हूं कि क्या ब्रह्म शब्द केवल जातिवाचक है? क्या इसका कोई और अर्थ नहीं? और लीजिये। आप के ब्रह्मपुराण में लिखा है—

वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रयः ।
ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा ॥
स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात्
स्वधर्मात्प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥
(अ० २२३, श्लोक १६, १७)

मनुस्मृति अध्याय ११ श्लोक ९७ में भी लिखा है

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् ।
तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति ।

अर्थात् सुरापान करने वाला ब्राह्मण शूद्र हो जाता है उसका ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है। जब वर्ण पलट सकते हैं तो वे जन्मसिद्ध कहां रहे।

गिरिधरशर्माजी (तृतीय वार)

वाद काल में वितण्डा बताना या निग्रहस्थान उद्भावित करना मेरे विचार से दोष युक्त नहीं है, जिस पर कि आपने बुरा माना है। (इस पर श्रीयुक्त लाला मुन्शीरामजी ने कहा; नहीं कोई दोष नहीं है आप कहते जाइये) पुरुषसूक्त के मन्त्र पर आप की शंका का तटस्थ लक्षण घटा कर मैं युक्तियुक्त उत्तर दे चुका हूं, फिर भी न जाने क्यों आप वही शङ्का उठाते हैं। मेरे अर्थ में प्रमाण तो वेद ही है, मन्त्र के ही पीछे पाद में 'पद्भ्यां शूद्रो अजायत' स्पष्ट लिखा है, उसही के अनुसार मैं सम्पूर्ण मन्त्र का अर्थ करता हूं। आपने तो अपना सम्यक् अर्थ ही अभी नहीं बताया, उसमें प्रमाण तो जहां तहां रहा। यह अर्थ आपने भी अब माना कि 'ब्राह्मण उत्पन्न होता है' किन्तु जरा सोचिये, आप के मत से उत्पत्ति काल में ब्राह्मणत्व है कहां? आप तो पञ्चोवर्ष-वर्ष में गुण कर्म देख कर विद्यासभा द्वारा ब्राह्मण किये दिलवाते हैं।

तब ब्राह्मण उत्पन्न हुआ—इसका क्या अर्थ करोगे। लक्षणा द्वारा ब्राह्मणत्व उत्पन्न हुआ, कहोगे तो लक्षणा मानने में प्रमाण क्या? सुतरां उत्पत्ति काल से ही ब्राह्मणत्व आपको मानना पड़ेगा। गुण और कर्म

ब्राह्मण व्यक्ति को उत्पन्न नहीं कर सकते। आपने ब्राह्मणग्रन्थ का प्रमाण यह कह कर दिया है कि 'ब्राह्मण मन्त्र की व्याख्या में सहायक होते हैं' किन्तु जो गोपथ ब्राह्मण का वचन आपने पढ़ा है, उसका प्रकृत मन्त्र की व्याख्या से कोई भी संबन्ध नहीं है। हां प्रकृत मन्त्र का व्याख्यान रूप ब्राह्मण में आपको सुनाता हूं—'प्रजापतिरकामयत, प्रजायेय इति। स मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत, तमग्निर्देवतान्वसृज्यत, गायत्री छन्दो, रथन्तरं साम, ब्राह्मणो मनुष्याणाम्, अजः पशूनाम्, तस्मात्ते मुख्याः, मुखतो ह्यसृज्यन्त' इत्यादि। यहां स्पष्ट प्रजापति के मुख आदि से ब्राह्मणादि चारों वर्णों की उत्पत्ति बताई गई है। अन्यत्र भी शतपथ काण्ड १४ अध्याय ४ ब्राह्मण २ में 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्, एकमेव, तदेकं सन्न व्यभवत्, तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत क्षत्रम्' इत्यादि ग्रन्थ द्वारा प्रथम ब्राह्मण की फिर क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति बता कर, धर्म द्वारा इनकी विभुता बोधित कर, आगे 'तदग्निनैव देवेषु ब्रह्माभवत्, ब्राह्मणो मनुष्येषु, क्षत्रियेण क्षत्रियो, वैश्येन वैश्यः, शूद्रेण शूद्रः' इत्यादि ग्रन्थ में तत्तद्वर्ण से तत्तद्वर्णों की उत्पत्ति बताई गई है। इससे ब्राह्मण की व्याख्या सर्वथा मेरे पक्ष में अनुकूल है। आपका ब्राह्मण वाक्य भी हमारे विरुद्ध नहीं पड़ता, क्योंकि उस में 'व्रतेन ब्राह्मणः संशितो भवति' लिखा है, कर्म से ब्राह्मण प्रशंसनीय होता है—यह सब ही मानते हैं। गुण, कर्म से ब्राह्मण बनना इस वाक्य में कहां है? आप कहते हैं, व्याकरण आदि यदि हमें वेद विरुद्ध ले जांय, तो वे कैसे माने जांय? किन्तु मैं निवेदन करता हूं कि बिना व्याकरण आदि के आप वेदविरुद्ध या वेदानुकूल कैसे समझ सकेंगे! बिना व्याकरण आदि की सहायता के तो किसी शब्द का अर्थ ही नहीं प्रतीत हो सकता, विरोध और अनुकूलता कैसे मालूम होगी। आपने जो मन्त्र प्रमाण दिये हैं, वे कथमपि आपका अभिमत सिद्ध नहीं कर सकते। 'अहमेवेदम्' इत्यादि मन्त्रों का विशेष अर्थ सनातनधर्म की दृष्टि से तो कुछ ‡और ही

‡ सायणादि पुरातनभाष्यानुसार आम्भृण ऋषि की वाक् नाम की कन्या ब्रह्मभाव के आवेश से यह सब कहती है कि मैं ही जो चाहूं सो करती हूं। मैं ही ब्रह्मा बनाती हूं आदि। अतएव 'अहं मित्रावरुणोभा

है, किन्तु मैं यहां आपका ही अर्थ मान लेता हूं—वेदवाणी कहती है कि मैं जिसे चाहूं उसे उग्र बना देती हूं; मैं ही ब्राह्मण को ब्राह्मण करती हूं— इत्यादि। तो इसमें हमें आपत्ति क्या है। वेदाध्ययन को क्या हम ब्राह्मणत्व का प्रयोजक नहीं मानते ? मुख्य ब्राह्मणत्व अवश्य वेदाध्ययन और तदुक्त कर्मानुष्ठान से ही होता है। हमारा तो यही सिद्धान्त है कि 'तपः श्रुतं च योनिश्चेत्येतद् ब्राह्मणसंज्ञिकम्' तप, शास्त्र और जन्म तीनों का योग होने पर मुख्यतया ब्राह्मण आदि माने जाते हैं। इससे आपका अर्थ मान लेने पर भी हमारे सिद्धान्त से कोई विरोध नहीं हुआ।

'कारुरहम्' इत्यादि दूसरा मन्त्र तो प्रकृत अर्थ में कुछ भी साधक नहीं; ऋषि कहता है कि मैं वेद सूक्तों का प्रचार करता हूं, पुत्र वैद्यक करता है, लड़की सत्तू पीसती है, (उपलप्रक्षिणी का अर्थ निरुक्तकारने सत्तू पीसने वाली ही किया है पत्थर कूटने वाली नहीं) अर्थात् घर के काम कर लेती है—तो इससे किसका वर्ण पलट गया ? सब आपस में बांट कर भिन्न २ काम करते हैं तो क्या वे भिन्न २ वर्णों के हो गये ? आज भी कोई घर के लिये जल आदि ले आता है—वह उस समय शूद्र हो जाता है ? या कुछ वस्तु खरीदने या बेचने पर वैश्य हो जाता है ? और कभी रात को दो चार खटमल मार दे तो क्या वह क्षत्रिय बन जाता है ? समझ में नहीं आता—यह मन्त्र आपने क्या समझ कर उपस्थित किया है। पुराण के प्रमाणों के सम्बन्ध में समयाभाव से मैं कुछ न कह सका

जिसमें 'अहं द्यावा पृथिवी आविवेश' 'अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा' इत्यादि वाक्य इस सूक्त के संगतार्थ होते हैं। क्योंकि ये सब काम ईश्वर कृत ही हैं जो कि इसमें वर्णित हैं वेदवाणी किसी को उग्र नहीं बनाती, न पवन की तरह चलती है, न आकाश, पृथिवी को पैदा करती है। और आर्य समाज के सिद्धान्तानुसार तो मन्त्रार्थ में ईश्वर प्रवक्ता ही मानी जाती है। तदनुसार यही अर्थ होना चाहिये कि 'ईश्वर कहता है, मैं जिसे चाहता हूं, उसे ब्राह्मण बना देता हूं' इससे तो विपरीत ही पक्ष सिद्ध हुआ। गुणकर्मानुसारता जाती रही—इस पर पाठक सज्जन ध्यान दें।

केवल इतना ही इस बार कह देता हूं कि ब्रह्मपुराणादि के वचन वेदाध्ययन आदि कर्मानुष्ठान की प्रशंसा बताते हैं, वे वर्णों की उत्पत्ति नहीं बोधित करते।

इन्द्रचन्द्रजी (तृतीयवार)

पुरुषसूक्त के प्रमाण पर अभी संतोष नहीं हुआ। आप तटस्थलक्षण की सिद्ध कल्पना करते हैं, इसमें प्रमाण क्या? व्याकरण का आप नाम ही लेते हैं, व्याकरण की कोई सहायता अपने अर्थ में नहीं ली। 'जन्माद्यस्य यतः' सूत्र में यतः पद है, जिससे तटस्थ लक्षण हो जाता है, इस मन्त्र में तो यतः पद है ही नहीं।

मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ इतना ना कहने से 'मुख क्या है' इस प्रश्न का उत्तर कैसे होगा? मेरे कहे हुये ब्राह्मण ग्रन्थ के वाक्य में आपने यह तो कह दिया कि 'व्रत से ब्राह्मण प्रशंसित होता है' किन्तु "अविच्छिन्न: पद पण्डितजी खा गये। 'खा गये' पद के लिये क्षमा मांगता हूं, उस पर आपने ध्यान नहीं दिया। उससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता कि कर्म करने से ही ब्राह्मण नष्ट नहीं होता, अन्यथा नष्ट हो जाता है। कर्म के ही आधार पर ब्राह्मणादिवर्ण हैं। मैंने ब्रह्मपुराण का वचन कहा था, उस पर पण्डितजी कुछ उत्तर नहीं देते। कहते हैं, प्रशंसा है। मैं पूछता हूं क्या यह भी प्रशंसा है, जो कि महाभारत में लिखा है कि—

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥
(महा० शा० प० १८८ अ० १० श्लो०)

इसमें स्पष्ट कर्म से ही वर्ण होना बताया है। और क्या गीता का यह वचन भी प्रशंसा ही है कि—

(चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः)

यहां गुणकर्म के विभाग से ही चारों वर्ण बताये हैं। आप लोक प्रथाको प्रमाण देते हैं, मैं कहता हूं कि भविष्यपुराण अ० ४१ श्लो० २२, २३ देखिये।

गणिकागर्भसंभूतो वशिष्ठश्च महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥
नविकागर्भसंभूतो मन्दपालो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥

अर्थात् गणिका के गर्भ से उत्पन्न वशिष्ठ, और धीमरी के गर्भ से उत्पन्न मन्दपाल, तपसे ब्राह्मण हो गये। ऐसे ही और भी बहुत से क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ब्राह्मण हो गये। महाभारत, देवीभागवत आदि में अनेक ऐसे इतिहास हैं। स्मृतियों के वचन भी मैंने कहे हैं। मेरे मन्त्र पर आप कहते हैं, सनातन धर्म में इसका अर्थ कुछ और है। और क्या है? वाक् ही तो उस मन्त्र की ऋषि स्पष्ट मानी गई है, वेदवाणी कहती है कि मैं ब्राह्मण बनाती हूं। 'काररहम्' इत्यादि मन्त्र के अर्थ का आपने अविरोध दिखा दिया, किन्तु आपकी मनुस्मृति में तो वैद्यको एक पंक्ति में भोजन कराने का भी निषेध लिखा है, फिर ऋषि का पुत्र चिकित्सक कैसे हो गया।

पं० गिरिधरशर्माजी (चौथी बार)

पुरुष सूक्तका पूरा उत्तर हो जाने पर भी आप व्यर्थ बार २ उस ही बात का उल्लेख करते हैं। 'यतः' पद नहीं है तो क्या हुआ? 'पद्भ्यां शूद्रो अजायत' यह तो चौथे पाद में स्पष्ट लिखा है, और आगे 'नाभ्या आसीदन्तरिक्षम्' इत्यादि मन्त्रों में सब पञ्चमी ही पञ्चमी विभक्ति है, इस सब प्रकरण को देखते हुये 'मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ' इसके अतिरिक्त और क्या अर्थ हो सकता है? और फिर यह क्लिष्ट कल्पना है तो आप तो कृपया अपना अर्थ कहिये—जिसमें क्लिष्ट कल्पना न हो। आश्चर्य है कि आप केवल शङ्का उठाते हैं, अपनी तरफ से मन्त्र का अर्थ अब तक कुछ नहीं कहा। 'मुख क्या है' इस प्रश्न का उत्तर तटस्थ लक्षण द्वारा होगया—यह मैं कई बार समझा चुका हूं, 'जिससे ब्राह्मण उत्पन्न हुवे—वह

१ ये श्लोक वेङ्कटेश्वर प्रेस की पुस्तक में अध्याय ४२ की २९, ३० संख्या में मिलते हैं।

पुरुष (ईश्वर) का मुख है' यह स्पष्ट तो उत्तर है। 'अहमेवेदम्' मन्त्र का आपका कहा हुआ अर्थ मान कर भी मैं उत्तर दे चुका हूं-उस पर आपने कुछ नहीं कहा। 'कारुरहम्' मन्त्र पर आप शङ्का उठाते हैं कि मनुस्मृति में चिकित्सक होना निषिद्ध है, किन्तु इस का वर्ण-व्यवस्था के प्रकृत विषय से क्या संबन्ध हुवा? मनुस्मृति में चिकित्सा क्यों निषिद्ध है, और मन्त्र में वैद्य होना क्यों लिखा है-यह एक बिलकुल भिन्न विषय है, वर्णव्यवस्था से इस का कुछ भी संबन्ध नहीं।

प्रमाण के संबन्ध में जो पत्रों में वाद चलता था, वह अब सामने आया। हमारी धारणा थी कि आर्यसमाज वेद के प्रचार के लिये है, वेद को ही मुख्य प्रमाण मानता है, और यह गुरुकुल वेदप्रचारार्थ ही प्रधानतया उद्योग करता है। यहां बड़े २ वैदिक विद्वान् अवश्य होंगे। इस ही लिये वेद के आधार पर ही हम लोग आज का विचार चाहते थे। मैं बराबर वेद के ही प्रमाण दे रहा हूं; किन्तु आप 'वेदलिङ्गार' होते हुवे भी क्यों मुझे स्मृति और पुराणों की तरफ घसीटते हैं। सब बातों का उत्तर देने का समय कहां है? गोपथ ब्राह्मण में 'अविच्छिन्नो भवति' पर फिर आपने व्यर्थ ही शङ्का की है, मैं पूर्व ही कह चुका हूं कि 'व्रत' अर्थात् कर्म से ब्राह्मण प्रमाणित होता है, और उसकी धन, सन्तति विच्छिन्न नहीं होती। जो अच्छे कर्म करेगा, उसका कुल अविच्छिन्न रहेगा-ठीक ही है? मैं अपने पक्ष में ब्राह्मण के कई एक प्रमाण दे चुका हूं-तिन पर आपने कुछ नहीं कहा है। और सुनिये-शतपथ काण्ड ३ अध्याय १ ब्राह्मण १ में लिखा है कि शूद्र यज्ञशाला में भी न आने पावे, आगे यहां तक निषेध है कि यजमान शूद्र से कभी संभाषण न करे। आवश्यकता आपड़े तो ब्राह्मण आदि के द्वारा उससे कहलवावे। और शतपथ काण्ड ४ अध्याय ४ ब्राह्मण ४ में लिखा है कि 'तस्मान्न ब्राह्मणः सर्वस्येव क्षत्रियस्य पुरोधां कामयेत' 'नो एव क्षत्रियः सर्वमिव ब्राह्मणं पुरोदधीत' अर्थात् ब्राह्मण चाहे जिस क्षत्रिय का पुरोहित न बने, और क्षत्रिय भी चाहे जिस ब्राह्मण को पुरोहित न बनावे, किन्तु योग्य ब्राह्मण ढूंढे। इससे सिद्ध है कि अयोग्य भी ब्राह्मण और क्षत्रिय हो सकते हैं, जो

कि गुण, कर्म से वर्ण मानने पर असंभव है। और ताण्ड्य ब्राह्मण के छान्दोग्य उपनिषत् में तो स्पष्ट लिखा है कि 'तद्य इह रमणीयचरणा भवन्ति, अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्, ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा, वैश्ययोनिं वा। अथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा' (छान्दोग्यउप० प्रपा० ५ ख० १० क० ७) अर्थात् जो अच्छे आचरण करते हैं, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि की अच्छी योनि प्राप्त करते हैं, और बुरे आचार वाले शूकर, कुक्कुर—चाण्डाल आदि की बुरी योनि में जाते हैं। यहां पूर्व जन्म के कर्मानुसार ही शूकर, कुक्कुर आदि योनियों की तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि योनि पाना भी लिखा है। इससे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि का योनिसिद्ध होना स्पष्ट हो जाता है। पं० श्रीआर्यमुनिजी जो इस सभा में विराजमान हैं, उनने भी छान्दोग्य के भाष्य में इसका यही अर्थ स्पष्ट लिखा है। इससे ब्राह्मण ग्रन्थ सर्वथा हमारे पक्ष में सिद्ध हो जाते हैं। रही स्मृतियों की बात, सो जिन स्मृतियों में—

'सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातयः (याज्ञवल्क्य)
'उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती' (मनुः)

(समान वर्ण के पुरुष से समान वर्ण की स्त्री में समान वर्ण का सन्तान होता है) (ब्राह्मण उत्पत्तिमात्र से ही धर्म की मूर्ति है) इत्यादि सिद्धान्तों का डिण्डिम बज रहा है—उन स्मृतियों को गुण कर्मानुसार वर्ण मानने में साक्षी देना सिवाय साहस के क्या हो सकता है? 'यस्य कायगतं ब्रह्म' इत्यादि वचन के द्वारा मनु ने मद्यपान से ब्राह्मण की पतितता दिखलाते हुवे उस कर्म का निषेध किया है, वर्ण पलटना या छोटे वर्ण से बड़ा वर्ण बन जाना मनु ने कहीं नहीं लिखा। ‡ब्रह्मपुराण भी

‡ इस ब्रह्मपुराण के वचन के संबन्ध में बड़ा धोका हुवा। पुस्तक तो हमें उस समय दी नहीं गई, और पूर्वापर प्रकरण बिना बताये मध्य के २ श्लोक पढ़ दिये गये। असल में वहां जन्मान्तर की गति का प्रकरण है। कौन वर्ण कैसे कर्म करने से, अग्रिम जन्म में किस योनि में जाता है,

शूद्र कर्म करने का निषेध करता हुआ अपने अपने कर्म में दृढ़ रहने की आज्ञा देता है। स्मृतियां तो सब जन्मसिद्ध व्यवस्था में ही अनुकूल हैं। न केवल मनु आदि स्मृति, गृह्यसूत्र भी जिनके आधार पर हमारे संस्कार होते हैं, वे भी जन्म से ही वर्ण मानते हैं। उन सूत्रों के आधार पर ही श्री स्वामी दयानन्दजी ने भी संस्कार विधि में लिखा है कि 'ब्राह्मण का वसन्त में उपनयन करे, क्षत्रिय का ग्रीष्म में' इत्यादि। भला पचीसवें वर्ष में गुणकर्म देख कर जब वर्ण कायम करना ठहरा, तो उपनयन काल में वह ब्राह्मण या क्षत्रिय कहाँ से हो गया? उपनयन ही नहीं, नामकरण में भी श्री स्वामीजी लिखते हैं—ब्राह्मण का नाम शर्मान्त हो, क्षत्रिय का ऐसा—इत्यादि। बालक होते ही ग्यारहवें दिन नाम रक्खा जाता है, उस समय गुण, कर्म कैसे समझ लिये गये। यहां सिवाय उत्पत्ति के और कोई बात नहीं कही जा सकती। आप पुराणों के लिये कहते हैं कि उनमें दूसरे वर्णों का ब्राह्मण होना लिखा है, मैं कहता हूं कि पुराण में †तप और योग की अलौकिक शक्ति मानी जाती है, उस

यही आरम्भ से प्रश्न उठा है। जो पूर्वोक्त श्लोक प्रमाणरूप से पढ़े गये थे, उनका पहला श्लोक है कि—

'यस्तु विप्रत्वमुत्सृज्य क्षत्रधर्मान्निषेवते।
ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनौ प्रजायते।'

(ब्र० पु० अ० २२३ श्लो० १५)

इसमें स्पष्ट लिखा है कि ब्राह्मण यदि अपने कर्म छोड़कर क्षत्रिय कर्म करने लगता है तो वह क्षत्रिय योनि में उत्पन्न हो जाता है। योनि में उत्पन्न होना इस जन्म में तो बन नहीं सकता। सुतरां यहां जन्मान्तर का आशय है। सो इस जन्मान्तर के प्रकरण को इस ही जन्म में वर्ण-परिवर्तन का प्रमाण कह कर प्रतिवादी महाशय ने कैसी लीला की है—यह पाठक देखें।

† 'गणिकागर्भसंभूतः' इत्यादि जो वचन पूर्व लिखे गये हैं, उन में तप को कारण स्पष्ट लिखा है—'तपसा ब्राह्मणो जातः'। सिवाय इसके वसिष्ठ की उत्पत्ति किसी लौकिक वेश्या से नहीं, मित्रावरुण

शक्ति के प्रताप से असंभव से भी संभव हो सकता है। पुराणों में पुरुष का स्त्री, और स्त्री का पुरुष हो जाना भी लिखा है, वियोनि से भी पुरुषों की उत्पत्ति लिखी है। जैसे आज वे सब दिव्य घटना नहीं हो सकतीं, वैसे ही और वर्णों से ब्राह्मण भी आज नहीं हो सकता। जो लोग अलौकिक शक्ति पर विश्वास नहीं करते, उन्हें पुराण की कथाओं की आड़ ही न उठानी चाहिये। हम उस शक्ति पर विश्वास करते हैं, और युक्ति से सिद्ध भी कर सकते हैं, किन्तु उस विवाद का आज समय नहीं है। गीता के 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम्' वाक्य का अर्थ स्पष्ट है कि चारों वर्ण मैंने ही (ईश्वर ने) बनाये, और उनके गुण और कर्म का विभाग भी मैंने ही किया। इससे आप अपना मत कैसे सिद्ध कर सकते हैं? क्या गुण, कर्म पद देख कर ही आपने श्लोक बोल दिया? महाभारत के श्लोक का उत्तर समय समाप्त हो जाने से नहीं दे सका हूं—अगली बार दूंगा।

इन्द्रचन्द्रजी (चौथी बार)।

आपने वर्णव्यवस्था को प्रचलित कहा था, इस ही से मुझे पुराण का झगड़ा बीच में लाना पड़ा। पुराणों का झगड़ा यदि न लाऊं तो प्रचलित का खण्डन कैसे करूं? आप कहते हैं, पुराणों में असंभव बातें भी हैं, किन्तु यह तो कहिये कि पुराण का लेख सत्य है, या झूठ। सत्य है तो आप मान चुके कि ब्राह्मण शूद्र और शूद्र ब्राह्मण हो जाता है। पुरुषसूक्त के प्रमाण का ठीक उत्तर नहीं हुवा। तटस्थ लक्षण जहां संभव है, वहीं लगेगा। आप 'पद्भ्यां शूद्रो अजायत' इस एक पद के आधार पर तीन पूर्व के पदों को भुला देते हैं, और पूर्व मन्त्र के प्रश्नों भी उधर ही ले जाते हैं, भला एक शब्द इन सब को कैसे खैंच ले जायगा। उलटा

* देवताओं के औरस से उर्वशी नाम की दिव्याङ्गना में ब्रह्मा के मानस पुत्र वसिष्ठ का जन्मान्तर हुआ है—यह कथा पुराणों में स्पष्ट है, और और भी जहां ऐसा प्रसङ्ग है, वहां विशेष कारण बताया हुवा है। किन्तु पुराण की व्यवस्था इस वाद में प्रधान थी ही नहीं, इसलिये सब बातों का विस्तृत उत्तर नहीं दिया गया।

तीन से वह खिच आना चाहिए। और यह भी तो बताइये ब्राह्मण आदि किसके मुख आदि से हुवे, और पैरों से शूद्र कैसे पैदा हो गये ? आपके यहाँ अवतार तो १० ही माने जाते हैं; (महात्मा मुन्शीरामजी ने कहा, २४ माने जाते हैं) यह कौनसा अवतार है जिसके मुखादि से ब्राह्मणादि हुवे ! यह सब समझाइये, केवल बातों से क्या होता है। आपने संस्कार विधि का प्रमाण दिया, सो उसमें कुछ विपरीत नहीं। श्री स्वामीजी का यही आशय है कि पिता गुण, कर्मानुसार जिस वर्ण का हो, उसही के अनुसार पुत्रका नाम करण, उपनयन आदि होते हैं। माता पिता के गुण कर्मानुसार बालक के गुण कर्म हुवा करते हैं। पूर्व जन्म के संस्कार, माता पिता, और यहाँ की शिक्षा आदि, तीनों गुण कर्म पैदा होने में कारण हैं। इससे ब्राह्मण के पुत्र के संस्कार ब्राह्मण जैसे ही किये जायगे। किन्तु बिना गुण कर्म के वर्ण, सार्मना शून्य है। जैसे किसी मामूली आदमी को हंसी से राय साहब कहते हैं, ऐसे ही डाक बांटने वाले को ब्राह्मण कहना मखोल ही है। जैसे हमारा † राय साहिब जन्म से राय साहब नहीं हो सकता, ब्राह्मण भी जन्म से नहीं होता। आपने मेरे वाक्य 'अविच्छिन्नो भवति' का अर्थ किया है उसका कुल विच्छिन्न नहीं होता, भला इस वाक्य में कुल कहाँ से आ गया ? और देखिये मनु में क्या लिखा है कृपया इसका अर्थ लगाइये।—

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजरामरा।

अर्थात् माता पिता की दी हुई जाति नष्ट हो जाती है; किन्तु आचार्य जो गुण कर्मानुसार जाति देता है वह अजर और अमर है। जन्म से ही ब्राह्मण आदि होते तो वे द्विजन्मा क्यों कहलाते। मेरे प्रश्नों पर तो पण्डित जी ने कुछ नहीं कहा है। वेद कभी जन्म से वर्ण मान नहीं सकता। वेद में संकुचित विचार नहीं हैं।

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।

†पाठक विचारें, भला राय साहब भी कोई वर्ण है, जो जन्म से होता।

इत्यादि मन्त्रों में समानभाव से सबके लिये प्रार्थना है । गुण कर्म से ही वर्ण मानने की प्रथा चली आई है, वही पुराण, ब्राह्मणों में लिखा है। आपने ब्राह्मणग्रन्थ का प्रमाण दिया कि ब्राह्मण को ही पुरोहित बनाओ, सो ठीक ही है। पुरोहित तो ब्राह्मण ही होते हैं, और कोई पुरोहित नहीं हो सकता। लेकिन मुझे आश्चर्य है कि इससे जन्म से वर्ण कैसे सिद्ध हो गया? अब मैं एक युक्ति देता हूं, पण्डित जी उसका उत्तर देवें। हमारी योनि भोगयोनि है या कर्मयोनि? यदि कर्मयोनि है तो कर्मों का फल जरूर मिलना चाहिये, फिर कर्म करने से वर्ण क्यों नहीं पलट सकता?

पं० गिरधरशर्माजी (पांचवीं बार)

वर्णव्यवस्था को प्रचलित कहने का मेरा आशय वर्तमान में प्रचलित होने से था, मैंने प्रत्यक्ष प्रमाण की साक्षी दी थी कि वर्तमान में सर्वत्र जन्म से ही वर्ण माना जाता है । पुराण की कथा का मैंने कोई उल्लेख नहीं किया था, स्मृति और पुराणों को आप ही बीच में लाये थे और अब भी बराबर उन्ही प्रमाणों पर जोर देते हैं। वेद के प्रमाणों का आपने कोई उत्तर नहीं दिया है, और आपके सब प्रमाणों का मैं उत्तर दे चुका हूं। पुराण के संबंध में कह चुका हूं कि पुराण की कथाएं सब सत्य हैं। न केवल इतर वर्ण से ब्राह्मण या ब्राह्मण से इतर वर्ण हो जाना सत्य है, स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री हो जाना भी सत्य है। किन्तु यह सब योग और तप की अलौकिक शक्ति से कहीं २ होता था। वर्तमान में उन शक्ति का अभाव होने से उन बातों का जिक्र व्यर्थ है।

अतएव मैं पहले ही कह चुका हूं कि पुराण की कथाओं पर आज विवाद नहीं होगा, विचार "वैदिक वर्णव्यवस्था" का है। पुराण के प्रमाणों को आप व्यर्थ बेर २ दोहराते हैं। पुरुषसूक्त के मन्त्र पर फिर आप वही बात कहते हैं कि एक पाद तीन पाद को कैसे खैंच ले जायगा महाशय! जरा विचारिये एक पाद नहीं, आगे मन्त्रों में सब प्रकरण ऐसा ही है।

'चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्त ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ।

इन सब में पुरुष के (ईश्वर के) मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुवा, चक्षु से सूर्य हुवा—इत्यादि उत्पत्ति ही उत्पत्ति स्पष्ट लिखी है। फिर इन सब के साथ 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' का भी ब्राह्मण मुख से उत्पन्न हुवा—यह अर्थ क्यों न होगा। तटस्थ लक्षण यहां क्यों नहीं संभव है-यह तो आप कुछ कहते नहीं, योंही अपनी पहली बात को दोहरा देते हैं। आगे आप पूछते हैं कि पैर से शूद्र कैसे उत्पन्न हो गये? और किस शरीर से हुवे? वह कौनसा अवतार था? इस पर विवश मुझे फिर कहना पड़ता है कि यह सब 'अर्थान्तर' रूप निग्रहस्थान नहीं तो क्या है? वर्णव्यवस्था के विषय में आप सृष्टि और अवतारों की बात पूछते हैं-७ मिनिट मुझे बोलने का समय मिलता है, जिसमें मैं सृष्टि प्रक्रिया भी बता दूं, ईश्वर स्वरूप भी कहूं और पुराणों की सब कथाओं की व्यवस्था भी कर दूं-भला यह भी कोई न्याय है ?-श्रुति आपको और मुझ को दोनों को मान्य है, श्रुति में 'पद्भ्यां शूद्रो अजायत' लिखा है, फिर उस प्रकरणान्तर की शङ्का यहां क्यों छेड़ी जाय ? श्रुति को जब आप स्वतः प्रमाण मानते हैं, तो फिर उसमें शुष्क तर्क को क्यों आश्रय देते हैं कि 'पैर से कैसे पैदा हुवे' श्रुति ने कहा है—इससे काम लीजिये। अवतार तो पुराण शास्त्रों में अनन्त माने हैं, किन्तु यहां तो अवतार का कोई प्रसङ्ग नहीं, 'विराजो अधिपूरुषः' जो पूर्व मन्त्र में लिखा गया है, उस ही के मुखादि से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति है। आगे चल कर आप ने ३ कारण मान लिये हैं, पूर्व जन्म के संस्कार, माता पिता, और शिक्षा आदि। भला फिर सनातनधर्मी और क्या कहते हैं? पूर्व जन्म के संस्कारानुसार उन उन माता पिताओं के यहां जन्म होता है, माता, पिता जैसे वर्ण के हों, जैसे उनके गुण, कर्म हों-वैसे ही पुत्र के भी होते हैं-शिक्षा से उनका विकास होता है—अतः पुत्र भी उस ही वर्ण का होता है—यही हमारा मत है। ईश्वर आपका भला करे कि आपने प्रतिवादी होते हुवे भी इस सत्य तत्त्व को स्पष्ट अक्षरों में मान लिया। यह तो वही बात प्रत्यक्ष होगई कि

(जादू वो जो सिर पर चढ़ कर बोले)

आपके ही मुख से फैसला हो गया। गोपथ ब्राह्मण के वचन में 'अविच्छिन्नः' पर फिर आपने प्रश्न उठाया है कि 'कुल अविच्छिन्न होता है,' इसमें कुल कहां से आ गया। मैं कहता हूं कि 'विच्छिन्न' का मुख्य अर्थ तो टूटना है, ब्राह्मण टूटता नहीं, इसका आप और क्या अर्थ करेंगे? यही मानना युक्ति युक्त होगा कि उसका सन्तान नहीं टूटता। मनु का वचन आपने फिर कहा, किन्तु आश्चर्य है कि आप न जाने उस से क्या सिद्ध करना चाहते हैं। वह आचार्य की प्रशंसा का प्रकरण है कि आचार्य, माता पिता से उत्कृष्ट है। क्योंकि माता, पिता जो जन्म देते हैं, वह उनका पैदा किया हुआ हाड़ मांस का पुतला विनश्वर है, शीघ्र नष्ट हो जाता है। किन्तु आचार्य का दिया हुवा विद्या रूप +जन्म अजर अमर है, अर्थात् उसके द्वारा जो यशःशरीर या धर्मादिरूप शरीर प्राप्त होता है, वह शीघ्र नष्ट नहीं होता। इससे गुण, कर्म से वर्ण होने में क्या सहायता मिली? आचार्य के समीप ब्राह्मण आदि द्विजों के पुत्र ही जा सकते हैं—यह इस ही अध्याय के आरम्भ में मनुस्मृति में ही स्पष्ट है। 'द्विज' कहलाना तो हमारे ही मत के अनुकूल है, जरा सोचिये। एक बार माता पिता के यहां जन्म, और फिर आचार्य के यहां विद्या रूप जन्म। तो इससे माता, पिता का दिया हुवा जन्म भी तो द्विज होने में कारण होगया, फिर शूद्र ब्राह्मण कैसे बन सकेगा? मेरे ब्राह्मण और स्मृति के प्रमाणों पर तो आप ने कुछ कहा ही नहीं है। अब आप कहते हैं-वेद में संकुचित विचार नहीं हैं, वहां सबके लिये समान प्रार्थना है सो मैं कब कहता हूं कि वेद में संकुचित विचार हैं। जाति भेद संकुचित विचार नहीं कहा जा सकता। समान प्रार्थना होने पर भी ब्राह्मणादि भेद तो मंत्र में कहा है। और समानता का जो मंत्र आप प्रधानतया उपस्थित किया करते हैं—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय स्वाय चारणा

+ पूर्वोक्त श्लोक में 'जन्म जातिः' शब्द का अर्थ जन्म ही है, यह उस प्रकरण से स्पष्ट सिद्ध है।

इससे तो स्पष्ट जन्म से वर्णव्यवस्था सिद्ध हो जाती है, क्योंकि ईश्वर कहता है कि मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, आर्य सबको वेद वाणी का उपदेश देता हूं" यह आप उसका अर्थ करते हैं, तो इस अर्थ में वेदवाणी के उपदेश से पूर्व ही ब्राह्मण क्षत्रिय, शूद्र आदि वर्ण-विभाग सिद्ध होगया तबही तो कहा कि हम सबको उपदेश देता हूं। पहले वर्ण-विभाग में जन्म के अतिरिक्त और क्या कारण हो सकता है?

इन्द्रचन्द्रजी (पांचवीं बार)

* 'यथेमां वाचं कल्याणीं' मन्त्र मैंने नहीं बोला है। आपको भ्रम हुआ। आपने पुरुषसूक्त के सब मन्त्र पढ़ डाले हैं, किन्तु वहां आदि 'कतिधा व्यकल्पयन्' और अन्त "तथा लोकाँ अकल्पयन्" में दोनों जगह कल्प धातु आता है, उसे पं० जी भूल गये। "भूल गये" के लिये क्षमा मांगता हूं भुला दिया। कल्पधातुका अर्थ आप उगाइये। मैंने 'पैर से कैसे पैदा हुवे' पूछा था, उस पर आप कहते हैं-तर्क मत करो। किन्तु पण्डितजी! निरुक्तकार तो तर्क को ऋषि मानते हैं, तर्क से ही तो निर्णय हो सकता है, आप हमें तर्क से क्यों रोकते हैं। प्रश्न उत्तर की संगति आपने अभी तक नहीं लगाई। सीधी सी बात है-अगर कोई पूछे-कौन आता है, तो इसका उत्तर होगा-देवदत्त आता है, कौन आता है का उत्तर यह कोई नहीं देता कि देवदत्त यज्ञदत्त का पुत्र है। फिर 'मुखं किमस्य' का उत्तर-मुख से ब्राह्मण हुवे-यह कैसे हो गया? मैंने माता पिता आदि को वर्ण के कारण नहीं कहा था, गुण, कर्म के तीन कारण बताये थे। वर्ण तो गुण कर्मानुसार ही होता है, किन्तु गुण, कर्म तीन कारणों से होते हैं, पूर्व जन्म के संस्कार से, माता पिता के गुण कर्म से, और शिक्षा आदि से। जैसे घट के कई कारण हैं, तो क्या कोई बुद्धिमान् कहता है कि केवल मिट्टी से घड़ा होगा? जल, दण्ड आदि के बिना

---

* पाठक देखें कि आर्यसमाज के प्रसिद्ध प्राणभूत मन्त्र से प्रतिवक्ता महाशय किस तरह सफाई से अलग हटे हैं। न बोले थे तो क्या हुआ? उससे जन्म से वर्ण मानने का सिद्धान्त निकल पड़ता है-उसका उत्तर तो देते

नहीं होगा। ऐसे ही जब तक और कारण न होंगे, केवल जन्म से ब्राह्मण कैसे बन जायगा? मनु के श्लोक में जब दूसरा जन्म आदित्रो से बताया है, और उस जाति को अजर, अमर कहा है—तो हमारा पक्ष सिद्ध हो गया कि आचार्य की दी हुई जाति स्थिर रहती है। जन्म की जाति को जरा, मृत्यु आ जाती है। आप बीच में यश कहाँ से ले आये। मैंने आप के सब मन्त्रों की व्याख्या कर दी है, आप बार बार कहते हैं, हमारे प्रमाणों का उत्तर नहीं मिला। प्रत्युत मेरे मन्त्रों का आपने उत्तर नहीं दिया है। क्या यह कोई नियम है कि आप ही के प्रमाण प्रमाण माने जांय, मेरे न माने जांय। लीजिये, मैं और भी मन्त्र प्रमाण देता हूं—इसका अर्थ लगाइये—

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम् ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध ॥
(ऋ० मं० १० सूक्त १०७ मन्त्र ६)

इसमें कर्म से ही ब्राह्मण होना लिखा है। पुराण महाभारत का कोई उत्तर नहीं दिया—यदि आप पुराणों को सत्य मानते हैं तो गुण, कर्म से जाति मानिये। मैंने एक युक्ति दी थी कि भोगयोनि है या कर्म योनि, उसका कोई उत्तर नहीं मिला। अब मैं दूसरी युक्ति देता हूँ—कि कपाल से घट बनता है, और मट्टी से कपाल बनता है। तो क्या घट का कारण मट्टी नहीं होगी? ऐसे ही वर्ण का कारण आप कहते हैं, जन्म, और जन्म का कारण है—पूर्व जन्म के कर्म। तो वर्ण के कारण भी कर्म क्यों न हुवे? हम यदि तर्क का प्रयोग न करें तो वेद का अर्थ ही कैसे हो सकता है? सन्दिग्ध शब्द का अर्थनिर्णय कैसे करें—यह बताइये। मैं कहता हूं वेद से वेद का अर्थ करो। आप व्याकरण और मीमांसा कहते हैं, मैं कहता हूं व्याकरण से अर्थ क्यों किया जाय? वेद के अर्थ का उपाय बताइये।

गिरधरशर्म्माजी (छठी वार, उपसंहार)

पुरुषसूक्त के मन्त्र में कल्प धातु कह कर फिर आप शङ्का उठाते हैं, कहता हूं क्या कल्प धातु का अर्थ उत्पादन नहीं है? 'नकिरशमाय

कल्पते' में उत्पादन ही तो अर्थ है, और क्या है? फिर 'लोकाँ अकल्पयन्' लोकों को उत्पन्न किया, इसमें आपको क्यों संदेह हुआ? इस कल्प धातु से आप ब्राह्मणादि की उत्पत्ति का निषेध नहीं कर सकते। प्रश्नोत्तर की संगति बार बार कह देने पर भी यह शंका आपकी नहीं हटती। आप ही के दृष्टान्त पर समझ लीजिये 'कौन जाता है' इस प्रश्नका उत्तर यह भी हो सकता है कि 'देवदत्त जाता है' और यह भी हो सकता है कि 'रामलाल का पिता जाता है' क्या देवदत्त नाम न ले कर 'रामलाल का पिता जाता है' कहने से उत्तर नहीं हुवा? यही तटस्थ लक्षण है, कार्य्य द्वारा वस्तु परिचय कराया गया। ऐसे ही इस मंत्र में भी 'मुख क्या है' प्रश्न है,' जिससे ब्राह्मण उत्पन्न हैं, (वह मुख है) यह उत्तर है, क्या यहां कार्य्यद्वारा वस्तुपरिचय नहीं हुवा? और कितना इसे समझाऊं। आप तर्क मानने में निरुक्तकार की साक्षी देते हैं किन्तु स्मरण रहे कि निरुक्तकार ने 'मन्त्रार्थ-विचार' को ही तर्क कहा है। अपनी बुद्धि के आधार पर वेदों को चलाने को नहीं कहा। जो हमारी समझमें न आया, उस वेदोक्त अर्थ को न मानना, अपनी बुद्धि के पीछे मन्त्रों को चलाना है। जो वेद को स्वतः प्रमाण कहते हैं, वे उसे अपनी बुद्धि के पीछे चलाने को कैसे तैय्यार हो सकते हैं? फिर तो हमारी बुद्धि प्रमाण हुई, वेद क्या प्रमाण हुवे? वेद में कहा है कि 'मुख से ब्राह्मण और पैर से शूद्र पैदा हुवे' अब हमारी बुद्धि में न आने से यदि हम इसे न मानें, तो हमने वेद को कहां प्रमाण माना? रही यह बात कि मन्त्रों का अर्थ कैसे करें? सो यह तो मेरा आप से प्रश्न था, आपने उलटा उसे मुझ ही पर डाला है। हमारे तो वेद का अर्थ करने के साधन बहुत हैं, यह तो आप बताइये कि आप वेद मात्र को ही स्वतःप्रमाण मान कर उसका अर्थ या अर्थनिश्चय कैसे कर सकेंगे? वेद से वेद का अर्थ कैसे होगा? व्याकरणादि के विना तो किसी भी शब्द का अर्थ ज्ञान नहीं हो सकता। यह मैंने पूछा था उसका आपने कोई उत्तर नहीं दिया। आपने आगे कहा है, माता पिता वर्ण के कारण नहीं, गुण, कर्म के कारण हैं। अस्तु, यही सही, किन्तु गुण, कर्म के विना वर्ण नहीं होता, और गुण कर्म में माता पिता कारण हैं, तो माता पिता के अनुसार गुण, कर्म होंगे। और उनके अनुसार ही वर्ण होगा। यही

सनातन धर्म का सिद्धान्त आ गया। और आगे आपने घट के दृष्टान्त से स्पष्ट कर दिया। जो बात मुझे कहनी चाहिये थी, वह आप स्वयं कह कर मेरी सहायता कर रहे हैं। घट का दृष्टान्त आपका दिया हुआ कैसा अच्छा है, घट किसी एक कारण से पैदा नहीं हो सकता, कारणसामग्री से होता है। ऐसे ही सन्तान के गुण, कर्म भी पूर्व जन्म के संस्कार, माता पिता, और शिक्षा आदि तीनों के मिलने पर होंगे। एक भी कारण न रहने से नहीं हो सकते। तो अब ब्राह्मण माता पिता के बिना संतान में ब्राह्मण के गुण, कर्म पैदा ही नहीं हो सकते, फिर जो ब्राह्मण का पुत्र नहीं है वह ब्राह्मण होगा कैसे? सज्जनगण! प्रिय स्नातक चन्द्रजी, आखिर विद्वान् हैं, इनने शास्त्र पढ़ा है, इससे इनके मुख से बात ठिकाने की निकलती है, फिर चाहे आग्रह वश उसे छिपाने की कोशिश करें। आपके दिये हुवे न्याय से मेरा पक्ष स्पष्ट सिद्ध हो जाता है, हम भी यही कहते हैं कि योनि, विद्या और कर्म तीनों मिलने से ब्राह्मण होता है। किन्तु और और कारण रहते भी घट में जैसे मट्टी प्रधान है। वैसे वर्ण उत्पन्न होने में योनि प्रधान है। बिना गुण कर्म के भी वह 'जातिब्राह्मण' कहा जाता है, ब्राह्मणोचित कार्य न होने से मुख्य ब्राह्मण नहीं हो सकता। मनुजी के श्लोक में जाति शब्द का अर्थ जन्म है, यह मैं दिखला चुका हूं। फिर आचार्य का दिया हुआ जन्म अजर अमर है, इसका अर्थ यदि मैंने किया कि विद्या से जो यशः शरीर बनता है वह अमर है तो क्या बुरा किया। आप क्या विद्यावान् शरीर को अजर अमर कह सकते हैं? शरीर तो विद्यावान् हो चाहे अविद्यावान्, नश्वर ही है। यश रूप से या धर्म रूप से ही अजर अमर कहना होगा। सो उससे आपका मत सिद्ध नहीं होता। आपने भोगयोनि और कर्मयोनि का प्रश्न किया है, सो यह सब ही जानते हैं कि मनुष्ययोनि कर्मयोनि है, किन्तु किये हुवे सब कर्मों का फल इस ही जन्म में नहीं मिल जाता, ऐसा होता तो फिर आगे जन्म ही न होता। योगदर्शन के "सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः" सूत्र के भाष्य में स्पष्ट व्यवस्था है कि जाति-निष्पादक कर्म अदृष्टजन्मवेदनीय ही होते हैं। अर्थात् जाति की उच्चता

या नीचता के संपादक कर्म इस जन्म में अपना फल नहीं दे सकते, क्योंकि एक जन्म में जाति पलट नहीं सकती; दूसरे जन्म में उस कर्म के अनुसार उच्च या नीच जाति होगी। यही मैंने "तद्य इह रमणीयचरणाः" इत्यादि छान्दोग्य वाक्य से दिखाया था, जिस का आप कोई उत्तर न दे सके हैं। फिर आप की यह युक्ति किस काम की रही। परम्परा से कर्म को कारण सिद्ध करने की दूसरी युक्ति का भी आपने व्यर्थ श्रम किया, क्योंकि पूर्व जन्म के कर्म को तो हम स्पष्ट वर्ण होने में कारण मानते ही हैं। इस के तो मैं स्वयं पहिले ही कई प्रमाण दे चुका हूं। विवाद तो यही है कि इस ही जन्म में वर्ण नहीं पलटता। सो आप की दोनों युक्ति बिलकुल व्यर्थ होती हैं। अब मेरी युक्ति सुनिये। आप कहते हैं—जैसे कर्म करता है, वैसा वर्ण होता है। मैं पूछता हूं—कोई नीच कर्म क्यों करता है? कदाचित् अपनी इच्छा से, तो भला नीच कर्म की इच्छा किसी को क्यों होने लगी? तब यही कहोगे कि अपने स्वभाव के अनुसार सब कर्म करते हैं, तो स्वभाव ईश्वर का बनाया हुआ है—इस से वर्ण भी ईश्वरकृत ही हो गया। और स्वभाव पलट नहीं सकता, इस से वर्ण का भी पलटना असंभव है। प्रमाणों के सम्बन्ध में आप कहते हैं—मैंने सब का उत्तर दे दिया, अस्तु मैं उपसंहार में आप को स्मरण करा देता हूं कि किस २ का उत्तर नहीं हुआ। कई बार मेरे कहने पर भी आपने पुरुषसूक्त के "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" मन्त्र का अपने पक्ष का अर्थ बताया ही नहीं, आरंभ में "मनुष्य समाज का ब्राह्मण मुख है" अर्थ कहा था, उस का उस ही बार मैंने खण्डन कर दिया था, फिर अब तक कोई उत्तर नहीं। "पद्भ्यां शूद्रो अजायत" का अर्थ किया ही नहीं। जब आप से कोई अर्थ नहीं बना, तो अब मैं अगत्या श्रीस्वामी दयानन्द जी के 'भाष्यभूमिका' के अर्थ पर विचार करता हूं। श्रीस्वामीजी ने लिखा है—"अस्य पुरुषस्य मुखं ये विद्यादयो मुख्यगुणाः, सत्यभाषणोपदेशादीनि कर्माणि च सन्ति, तेभ्यो ब्राह्मण आसीदुत्पन्नो भवतीति" अर्थात् ईश्वर के जो विद्या आदि मुख्य गुण हैं, और सत्य भाषण, उपदेश आदि कर्म हैं, उन से ब्राह्मण उत्पन्न होता है। ऐसे ही आगे कहा है कि ईश्वर के जड़ बुद्धिता आदि गुणों से शूद्र उत्पन्न होता है" (भा० भू० पृ० १७०)। तो अब इस पर

विचार होता है कि ईश्वर के विद्या आदि गुणों से ब्राह्मण कैसे बन गया ? ब्राह्मण तो द्रव्य है, गुण और कर्म से द्रव्य कैसे बन सकता है ?

और सुनो–ऐसा अर्थ मानने पर ईश्वर में जड़बुद्धिता भी माननी पड़ेगी। प्रत्युत शूद्र और वर्णों की अपेक्षा अधिक होते हैं–इससे जड़ बुद्धिता ईश्वर में बहुत अधिक सिद्ध होगी। यह तो खूब ईश्वर हुवा ? और भी कई शङ्काएं इस अर्थ में आ पड़ती हैं–जिन्हें समयाभाव से मैं नहीं उठाता। सुतरां मेरा कहा हुवा अर्थ ही इस मन्त्र का मानना होगा। आगे मेरे कहे हुवे 'प्रजापति रकामयत' 'ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि' 'दशशीर्षो दशास्यः' 'ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यम्' 'अमुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रम्' 'येनागः पूर्वे पितरः पदज्ञाः' इतने मन्त्रभाग और प्रमाणों का आपने कोई उत्तर नहीं दिया है। कई ब्राह्मण और उपनिषद् के प्रमाणों पर भी कुछ नहीं कहा है। अपत्य प्रत्ययान्त की युक्ति पर भी आप मौन हैं। अब आप के प्रमाण लीजिये 'अहमेवेदम्' और 'कारहम्' दो मन्त्र आपने कहे, ये दोनों का स्फुट उत्तर मैं दे चुका हूं–जिस पर आगे आप कुछ नहीं बोले हैं। अब की बार जो मन्त्र आपने कहा है–उसका स्पष्ट अक्षरार्थ यही है कि 'उस ही को ऋषि, उस ही को यज्ञ के उपयुक्त ब्राह्मण कहते हैं, वही सामका गान करने वाला और स्तोत्र पाठ करने वाला होता है, वही तेज के तीनों शरीर जानता है, जो दक्षिणा से ऋत्विजों का आराधन करता है। अब आप ही बताइये–इस मन्त्र में आपका उपयोग क्या है ? क्या आपने कोई वेद–मन्त्र बोल दिया–इस ही से मैं प्रमाण मानलूं ? मन्त्र का प्रकृतविषय से कोई संबन्ध भी तो हो। गोपथ ब्राह्मण का आपने वचन कहा था–उसका भी उत्तर मैंने दे दिया। स्मृति, पुराण आदि का सामान्यतः उत्तर दे चुका हूं। विशेषतः वाद आज वेद के आधार पर था–इसलिये उन पर अधिक बल नहीं दिया गया। हां, एक महाभारत का वचन बाकी है–उसका संक्षिप्त उत्तर सुनिये। महाभारत शान्तिपर्व मोक्षधर्म अध्याय १८८ में भरद्वाज का प्रश्न यह है कि सब ही वर्णों में काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा, श्रम आदि होते हैं, और स्वेद, मूत्र, पुरीष, कफ, पित्त,

रुधिर आदि भी सब के शरीर में होता है, फिर उन वर्णों का भेदज्ञान कैसे हो ? 'कुतो वर्णविनिश्चयः' यह वर्ण के समझने का प्रश्न है, इस पर भृगु ने उत्तर दिया है कि 'न विशेषोऽस्ति वर्णानां..........कर्मभिर्वर्णतां गतम्' अर्थात् पूर्वोक्त शोक, क्षुधा, स्वेद, मूत्र आदि में, वर्णों का कोई विशेष नहीं है, ये सब ही के होते हैं, वर्णों की पहचान तो कर्म से होती है। आगे जिन कर्मों से पहचान होती है, वे ब्राह्मणादि के कर्म बताये हैं। बस, स्पष्ट हो गया कि कर्मों से वर्ण की पहचान होती है, उत्पत्ति नहीं, जैसा कि आप चाहते हैं†। आपके सब प्रमाणों का उत्तर हो चुका है। मुझे आगे समय नहीं मिलेगा—इससे अब आपको नया प्रमाण कोई नहीं देना चाहिये। और उपस्थित जनता अपने चित्त में समझ ले कि कौन पक्ष ठीक है। समझ कर सब सत्य का ग्रहण करें, यही मेरा अन्तिम विनय है!

स्नातक इन्द्रचन्द्रजी (अन्तिम उपसंहार)

आज्ञानुसार मैं नया प्रमाण नहीं दूंगा। आपने कल्पधातु का अर्थ उत्पत्ति कहा है, ठीक है, किन्तु उत्पत्ति अर्थ मानने से 'यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्' का यह अर्थ हो जायगा कि 'ईश्वर को कितने प्रकार से उत्पन्न किया' तो ईश्वर का भी उत्पन्न होना मानना ‡पड़ेगा।

---

† यह महाभारत की पुस्तक निकाल कर प्रकरणपूर्वक स्पष्ट समझा दिया गया था।

‡ यह शङ्का व्यर्थ है, पुरुषसूक्त का क्रमशः पर्यालोचन करने पर यह अर्थ सिद्धान्त सिद्ध होता है कि विराट् पुरुष जो उत्पन्न हुआ, उसकी सृष्टि के प्रवर्तक साध्य देवता और ऋषियों ने मानसयाग में पशुरूप से भावना कर-यजन किया, उस यजन के द्वारा पुरुष को तत्तद् ब्रह्माण्ड रूप से उत्पन्न किया। सो 'कतिधा व्यकल्पयन्' का यही अर्थ है कि 'कितने प्रकार से उत्पन्न किया' और व्यदधुः पद पूर्व में आया है, उसका भी उत्पत्ति स्पष्ट अर्थ है। अधिक माधव और महीधर के भाष्य में देखना चाहिये। श्री स्वा० दयानन्दजी ने भी कल्प धातु का अर्थ उत्पत्ति ही किया है।

इसमें आपका अर्थ फिर भी नहीं बैठता। आप इन तर्कों को एकदम हटा देने को क्यों कहते हैं? निरुक्तकार भी तर्क को ऋषि मानते हैं। सूर्य स्वतः प्रकाश होने पर भी बिना आंख के नहीं देखा जाता, ऐसे ही ×वह स्वतः प्रमाण होकर भी तर्क की अपेक्षा रखता ही है। तर्क की आंख बिना देखा भी नहीं देखा जाता। तर्क से ही निर्णय करना चाहिये। मैंने अपनी तरफ से तीन कारण नहीं बताये थे, *आपके मत का अनुवाद करके विरोध किया था कि आप तीन कारण मानते हैं, फिर केवल जन्म से ब्राह्मण कैसे होगा? हमारे मत से तो वर्णों के मुख्य कारण गुण कर्म हैं। गुण कर्म के तीन कारण हैं। माता, पिता, पूर्व जन्म के संस्कार, और इस जन्म की परिस्थिति। सो जैसे कोई घोड़े पर चढ़ कर भी जा सकता है गाड़ी पर भी और पैदल भी जा सकता है ÷ऐसे किसी भी कारण से गुण कर्म पैदा हो जाता है। तीनों कारणों से वर्ण उत्पन्न होता है, परन्तु +एक से नहीं हो सकता; यह याद रहे। जब एक आदमी शूद्र

× वेद के देखने की आंख बुद्धि है, न कि 'शुष्कतर्क'। और फिर तर्क जहां वेदविरुद्ध ले जाता हो वहां? अल्पज्ञ मनुष्य की बुद्धि के आधार पर सर्वज्ञ प्रणीत वेद को चलाना कहां का न्याय है।

* वाह, क्या सफाई है, अपने कहे का अभी २ इनकार।

÷ लीजिये, अब आप तीनों के समुदायको कारण नहीं मानते, प्रत्येकको कारण मानते हैं। अच्छा तो पूर्व जन्म के संस्कार भी कारण हुये, माता पिता भी, और शिक्षादि भी। ऐसी स्थिति में केवल ब्राह्मण माता पिता की संतान चाहे वह कुछ भी शिक्षा न पाया हो, उसमें भी ब्राह्मण के गुण कर्म होने चाहियें, और वह जरूर ब्राह्मण होना चाहिये। क्योंकि आप प्रत्येक को कारण मानते हैं; और माता पिता रूप कारण वहां उपस्थित है। ऐसे ही क्षत्रिय माता पिता का क्षत्रिय, वैश्य का वैश्य, और शूद्र का शूद्र ही होना चाहिये 'घट्टकुटमी प्रभातायितम्' फिर आप सनातनधर्म के सिद्धांत में ही आ पहुंचे।

\+ हैं। यह क्या? अभी अभी आप प्रत्येक को कारण कह रहे थे न! बलिहारी!

कुल का ब्राह्मण के गुण कर्म रख सकता है, तो उत्पत्ति सिद्ध जातिभेद इनमें कहां हुआ। भविष्य पुराण में भी लिखा है कि 'तस्मान्नगोऽश्ववत् कश्चित्' अर्थात् गो अश्व की तरह जाति भेद वर्णों में नहीं दीखता। आपने नया प्रमाण देने का निषेध किया है, किन्तु प्रकृत अर्थ में उपयुक्त होने से यह वचन मुझे कहना + पड़ा। आपने वर्ण शब्द का अर्थ अक्षर बता कर कहा है कि एक अक्षर दूसरे अक्षर के रूप में नहीं जा सकता, किन्तु एक वैयाकरण विद्वान् यह कैसे कह सकता है, क्योंकि व्याकरण में इ को य हो जाता ‡ है। आपने मनु के वचन में जाति शब्द से यश: शरीर कहां से लिया। आप कहते हैं; विद्यावान् हो या अविद्यावान् ब्राह्मण तो नहीं होगा। वाह! किधर का किधर आप अर्थ ले जाते हैं। आचार्य की दी हुई ब्राह्मण जाति अजर अमर होती है, यह * मनु ने कहा है, आचार्य की दी हुई जाति नहीं पलटती इससे हमारा पक्ष सिद्ध + है। आपने एक मन्त्र कहा है 'भूतानां ब्रह्मा प्रथमोऽथ जज्ञे' मैं कहता हूं ब्रह्मा शब्द का अर्थ ब्राह्मण ही है इसमें प्रमाण क्या? जैसा कि स्मृति-

---

+ कहने पर भी क्या हुआ? गो अश्व की तरह भेद न सही, रूपान्तर भेद तो ब्राह्मण आदि हैं।

‡ महाशय! यह तो लघुकौमुदी और सारस्वत घोटने वाले समझते हैं कि इ को य होता है। आप तो महाभाष्य पढ़े हैं न? फिर आप भी कहते हैं कि इ को य होता है। 'बुद्धिस्त्वस्य विपरिणाम्यते' का स्मरण ही नहीं रहा? शब्दनित्यतावाद भी याद नहीं आया। उलटा औरों को भी "शङ्ख पीला" समझाने लगे। इ को य नहीं हुआ करता, इकार के उच्चारण प्रसंग में यकार का उच्चारण किया जाता है।

* अच्छा इसही का क्या मतलब हुआ? क्या आचार्य ने जिसे ब्राह्मण बना दिया उसके गुण कर्म पलट जाने पर भी वह ब्राह्मण ही रहेगा? तब तो आप अब भी धर्मपालको ब्राह्मण ही मानते होंगे।

+ इस श्लोक की खूब विवेचना पहले की जा चुकी है।

यों में लिखा है एक ब्रह्मा जो चारों वेदों का आधार था; वही सबसे पहले‡ पैदा हुआ ऐसा अर्थ क्यों न मान लिया जाय। 'पितृमन्तं पैतृमत्यम्' मन्त्र भी आपने कहा है, उसका तात्पर्य यही है कि जिसका पिता प्रशस्त हो, वह ब्राह्मण भी * प्रशस्त होता है। इससे विना पिता की प्रशस्ता के भी ब्राह्मण होता है यह भी तो सिद्ध होगया। जब जन्म में आप कर्म को कारण कहते हैं तो वर्ण में कर्म को स्पष्ट कारण मान क्यों नहीं + लेते। आप घट का कारण कपाल को कहे जायेंगे, हम मिट्टी को कहे जायगे*। आपने कहा है, स्वभाव ईश्वर बनाता है, किन्तु यदि ईश्वर स्वभाव बनाता है, तो उस स्वभाव के अनुसार कर्म करने वाले को अच्छे बुरे फल क्यों ‡ देता है? ऐसा करने पर तो ईश्वर न्यायकारी नहीं रहेगा। यदि कोई राजा नियम बनाले कि चोरी किया करो,

---

‡ धन्य है! यहां तो आपने 'आर्य सिद्धान्त' भुला कर पौराणिकों का ब्रह्मा वेद में मान लिया न?

* ब्राह्मण प्रशस्त होता है यह किसी शब्द का अर्थ नहीं है। पितृ पितामह के प्रशस्त होने पर ही ब्राह्मण होता है यही मन्त्र का अभिप्राय है। और गुण कर्म से वर्ण मानने वाले पिता के प्रशस्त होने पर पुत्र को क्यों प्रशस्त मानते हैं? यह 'सिद्धान्त विरोध' नहीं तो क्या है?

+ अजी पूर्व जन्म के कर्म को तो हम कारण मानते ही हैं इसका हमने विरोध कब किया? आप तो इस हो जन्म के कर्म को कारण सिद्ध करने चले थे, सो आगये अन्तः हमारे ही पक्ष में।

* न्यायशास्त्र का सिद्धान्त है कि कारण का कारण अन्यथासिद्ध होता है, वह कारण नहीं माना जाता। सो आप अन्यथासिद्ध को ही कारण मानने में अपना महत्त्व समझते हैं। और इससे पक्ष उलटा सिद्ध होता है।

‡ इन बातों से प्रकृत में क्या संबन्ध। इन बातों का समाधान दर्शनों में स्पष्ट है कि पूर्व २ के कर्मानुसार उत्तरोत्तर स्वभाव आदि ईश्वर बनाता है—इस से उस में पक्षपातादि दोष नहीं। और ईश्वर नहीं बनाता, अपने आप ही कर्मानुसार सब बन जाता है तो ईश्वर मानते क्यों हैं?

और फिर चोरी का दण्ड देवे, तो वह न्यायकारी कैसे होगा ? आपने स्वामी जी की बात उठाई है, किन्तु ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका की भाषा आपने नहीं देखी, उस में "+आज्ञया" अध्याहार कर रक्खा है, जिस से अर्थ हो जाता है कि ईश्वर की आज्ञा से विद्यादि गुणों से ब्राह्मण होता है, और मूर्खतादि से शूद्र। इस अर्थ में कोई असंगति नहीं रहती। 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम्' इस गीतावाक्य का अर्थ आपने किया है, किन्तु इस में गुणकर्मानुसार क्यों कहा, मुखादि से पैदा किये-यह क्यों न †कहा ? पण्डितजी ने मन्त्र प्रमाण कहे हैं, मैंने भी ÷मन्त्र कहे हैं। इनने ब्राह्मण स्मृति आदि कहे हैं, मैंने भी कहे हैं। मैं भी जनता से ‡न्याय चाहता हूं कि वे निर्णय करें, कौनसा पक्ष न्याय है। कोई विशेष कारण नहीं कि एक ही जन्म में सब कर्म क्यों न फल देवें। जब एक ही जन्म में बहु,

+यह भी खूब आनन्द है, एक ही कर्ता के एक ही ग्रन्थ में संस्कृत में कुछ और भाषा में कुछ!! परंतु श्रीस्वामी दयानन्दजी संस्कृत स्वयं लिखते थे—और भाषा और कोई बनाता था—इस से उन का संस्कृत लेख ही विशेष प्रमाण मानना चाहिये। और पूर्व मन्त्र की व्याख्या में स्वामी जी ने कहा है कि "पुरुष के मुख अर्थात मुख्य गुणों से संसार में क्या उत्पन्न हुवा है ?" 'मूर्खता (पुरुष के) आदि नीच गुणों से किस की उत्पत्ति होती है' (ऋगादि भाष्यभूमिका पृ० १२६) यहां 'आज्ञा से' अध्याहार नहीं है, और मूर्खता आदि गुण पुरुष के ही माने गये हैं। इस से दूसरे मन्त्र की भाषा टीका में 'आज्ञा से' किसी ने पीछे से मिला दिया है, यही प्रतीत होता है।

†मैंने ही वर्ण बनाये और मैंने ही उन का गुण, कर्म विभाग किया यह कहने पर भी क्या कुछ बाकी रह गया ? क्या यह जरूरी है कि सब जगह मुखादि का नाम लेते रहें ? हठ का भी कोई ठिकाना है।

÷हां कहे तो जरूर हैं, अपनी बात के साधक हुवे हों या न हुवे हों।

‡

+ मुक्त हो जाता है, तो शूद्र ब्राह्मण क्यों नहीं हो सकता। इस से सब को सत्य का निर्णय करना चाहिये।

इस के अनन्तर गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाताजी ने शास्त्रार्थ समाप्त हो जाने की सूचना दे दी। यद्यपि प्रतिवादी महाशय ने पहिले के अवसरों में न कह कर अन्त में प्रभाव डालने को बहुत सी बातें कह डालीं, अभिसन्धि कदाचित् यही हो कि पहिले कहते तो खण्डन हो जाता। अन्त में चाहे कुछ भी कहलें। किन्तु ईश्वर की दया से बातें इतनी निःसार थीं कि उन का बोलना ही उन का खण्डन था। सनातनधर्म के पक्ष की उपस्थित जनता पर जो प्रभाव पड़ा था, उसे हम अपने मुख से कहना नहीं चाहते। जो उस समय उपस्थित थे उन के अन्तःकरण साक्षी हैं।

अन्त में विद्वत्समिति के मन्त्री ने गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाताजी को धन्यवाद दिया कि आपने विद्वानों को यहां बुला कर विचार कराया, और यथोचित स्वागत किया। महात्मा श्रीयुत मुन्शीरामजी ने भी विद्वत्समिति को धन्यवाद दिया, और भविष्यत् में भी ऐसे ही विचार में संमिलित होने का अनुरोध किया। विद्वत्समिति के सभ्य उस ही समय विदा हो कर हरिद्वार चले आये।

विश्वनाथ वेदपाठी,

मन्त्री विद्वत्समिति, हरिद्वार

+ अजी वाह! क्या यह शरीर रहते ही मुक्त हो जाता है? शरीर छोड़ने की मुक्त होने में जरूरत है तो उच्च वर्ण बनने में भी है। ईश्वरेच्छा ही ऐसी है कि आप के सब न्याय उलटे पड़ते हैं।